खुल जा सिमसिम

धीरेंद्र अस्थाना

खुल जा सिमसिम

के. आ रही थी।

मेज पर उसका पत्र खुला पड़ा है। वही लिखावट है जिसे मैं आँखें बंद कर उँगलियों के स्पर्श मात्र से पहचान सकता हूँ। बिना कॉमे, फुलस्टॉप के लिखी जानेवाली के. की लिखावट। वह पत्र नहीं लिखती, पत्रों में बहती है। और जो बह रहा हो उसे इतना

अवकाश अथवा होश कहाँ कि वह अर्धविराम या पूर्णविराम का व्यवधान स्वीकार करे। के. का पत्र शुरू होने के बाद सीधा खत्म होता है लेकिन अंतिम शब्द लिखने के बाद भी वह पूर्णविराम का प्रयोग नहीं करती।

के. से वजह पूछी थी एक बार पत्र में ही। उसने हँसकर **(**मतलब उसने जो शब्द लिखे उनकी बनावट बता रही थी कि इन्हें लिखते समय वह हँसी होगी**)** लिखा ...'पूर्णविराम न होने का मतलब है कि पत्र समाप्त नहीं हुआ है पत्र समाप्त हो सकता है क्या...'

यही के**.** आ रही है।

पत्र में लिखा है... '**27** को दिल्ली पहुँच रही हूँ 'शाहजहाँ' होटल के कमरा नंबर **203** में सुबह दस बजे से तुम्हारे इंतजार में बैठ जाऊँगी जानती हूँ कि उस दिन तुम्हारा दफ्तर होगा आ सकोगे न तुम्हारी कामिनी'

'आ सकोगे न' और 'उस दिन तुम्हारा दफ्तर होगा' लिखकर के. ने छेड़ा है। उसकी छेड़-छाड़ भी कितनी शालीन है। यह नहीं कि छेड़ने की ओट में छोटा कर दिया अथवा दुख दे दिया।

आज छब्बीस है। यानी कल। यानी आज का दिन और आज की रात बहुत लंबी हो जाएगी। कल की छुट्टी लेनी होगी। दो सी.एल. अभी बची हुई हैं। काम चल जाएगा।

के. आ रही है। यह एक ऐसा वाक्य है जो चेतना में किसी कर्णप्रिय धुन की तरह बज रहा है। हौले-हौले लगातार। आँखों को स्वप्निल और हृदय को रागमय बनाता हुआ। के. है ही ऐसी जिसके पत्र पढ़ने भर से हृदय के शोक अनुपस्थित हो जाते हों और जिसके शब्द इस कठिन दुनिया को कोमल करते हों। उससे रूबरू होने की कल्पना को मूर्तता देने के लिए शब्द नाकाफी हैं। वह आ रही है... सात महीने के परिचय में पहली बार। इन सात महीनों में जिस तरह के पूरे पाँच दर्जन पत्र के. ने लिखे हैं और उन पत्रों में क्रमशः विकास पाता जो भाव इस बीच सृजित हुआ है उसकी प्रौढ़ आँच में मेरी संपूर्ण चेतना चारों तरफ से धीरे-धीरे सिक रही है मानो और के. द्वारा लिखे गए शब्द दराज में बंद फाइल से निकल-निकलकर आकार ग्रहण कर रहे हैं। ऐसा आकार जो आपको छा ले। गुम हो जाएँ जिसमें आप।

'आप'। यह पहला शब्द था जो के. ने अपने पहले पत्र में लिखा था बिना किसी संबोधन के, बिना किसी खतो किताबत वाली औपचारिकता में पड़े हुए। इसके बाद बना था पूरा

वाक्य... 'आप मुझे अपने मित्रों में शामिल करेंगे आपके लेखन में मुझे एक ऐसी करुणा दिखाई पड़ती है जिसकी मैं आकांक्षी हूँ यह करुणा दुर्लभ होती जा रही है आज के समय में कौन नहीं चाहेगा इस करुणा को सहेज कर रखना आपकी कामिनी'

मैंने इस पत्र को कई तरह से पढ़ा था और इसके कई अर्थों को ग्रहण किया था। मेरे जीवन का यह पहला ऐसा पत्र था जिसमें कोई अर्धविराम था, न पूर्णविराम। मैंने अपनी सुविधा से अलग-अलग जगहों पर अर्धविराम और पूर्णविराम लगाकर इस पत्र को कई बार पढ़ा था। मैं मान नहीं पा रहा था कि इस तरह का पत्र लिखनेवाली कोई स्त्री 'पंक्चुएशन' की जानकारी नहीं रखती होगी। पत्र लिखने का यह उसका निजी स्टाइल था शायद। पहला ही पत्र कितना अनौपचारिक, कितना स्पष्ट, कितना पारदर्शी और कितने-कितने अर्थों को समेटे हुए। 'आपकी कामिनी' और 'कौन नहीं चाहेगा इस करुणा को सहेज कर रखना' मैंने दर्जनों बार पढ़े और हर बार एक नया अर्थ खुलता लगा। 'आप मुझे अपने मित्रों में शामिल करेंगे' वाक्य के बाद न प्रश्नवाचक चिह्न था न पूर्ण विराम और न ही विस्मयबोधक चिह्न। मैं समझ ही नहीं पाया कि इस वाक्य से आदेश की ध्वनि निकलती है, आग्रह की, अथवा अपेक्षा की। और सहसा उस अभूतपूर्व क्षण में मैंने चाहा, पुरुष होने के बावजूद चाहा कि यह आदेश ही हो। मेरी यह चाहत यह संकेत दे रही थी कि मैं इसी क्षण से कामिनी के प्रेमी में रूपांतरित हो गया हूँ।

अजीब और भावुक लग सकता है यह सोचना कि किसी लड़की के पहले ही पत्र को पाकर कोई खुद को उसके प्रेमी के रूप में देखने लगे। पर यह पत्र लड़की का था क्या? किसी लड़की में ऐसा पत्र लिखने की क्षमता ओर समझ होती है कि वह शब्दों के कारीगर को विस्मित कर दे? लड़कियाँ विस्मित करती हैं लड़कों को, अपने लड़कपन से, चूँकि लड़कियों का लड़कपन लड़कों के लड़कपन को तुष्ट करता है, मोहित करता है। यही वजह है कि लड़कपन की उम्र पीछे छूट जाने पर भी जो लड़की अपना लड़कपन नहीं छोड़ पाती वह लड़कपन छोड़ चुके लड़के को भीतर तक तोड़ती है। उम्र बीत जाने पर वही अदाएँ और आदतें क्रोध और विक्षोभ का कारण बनती हैं जो कभी मोहित करती थी। के. लड़की नहीं थी, यह बात मुझे के. को देखे-जाने बगैर उसके पहले ही पत्र से पता चल गई थी। मैंने बाद के परिचय में भी अपने अनुमान को पुष्ट करने की कोशिश नहीं की। यह खुला अपने आप। लगभग तीन महीने बाद, जब पत्र सिर्फ पत्र नहीं रह गए थे, साँस लेते रहने का सबब बन गए थे।

उसने लिखा... 'तुम्हारा खत पहली बार उन्होंने खोलकर पढ़ लिया नहीं जानती कि क्यों ऐसा मेरे जीवन में पहली बार हुआ है इसलिए विश्लेषण करना होगा कि क्यों

उनके मन में पहली बार कोई अपराधी जागा हालाँकि यह स्वीकार करते हुए उन्होंने पत्र मुझे दे भी दिया कि इसे उन्होंने पढ़ लिया है नहीं तुम्हारे बारे में एक शब्द नहीं पूछा उन्होंने लगा नहीं कि आहत हुए होंगे संबंधों को लेकर भी आहत हुआ जा सकता है यह उनकी जीवन शैली में नहीं आता वे आहत होते हैं तब जब बिजनेस में कोई बड़ी चोट लगे तुम्हारे पत्र का जवाब इस पत्र में देना तुम्हारे पत्र का महत्व कम करना होगा इसलिए कल दूसरा पत्र लिखूँगी तुम्हारी कामिनी'

कह नहीं सकता कि इस पत्र में ऐसा क्या था जिसने दफ्तर से एक दिन की छुट्टी लेकर कनाट प्लेस के लंबे बारामदों और इंडिया गेट के पार्क में भटकने पर मजबूर किया। वह क्या था जिसने अपने अनुमान के सच निकलने पर सुख के बजाय दुख सौंप दिया? स्त्री को भी अपनी 'प्राइवेट प्रापर्टी' मानने वाला वह कौन-सा सामंत था जो इंडिया गेट के पार्क में देर शाम तक मेरी चेतना पर सटाक-सटाक चाबुक बरसाता रहा? क्या मैं इस यथार्थ का सामना नहीं कर पाया था उस रोज कि कामिनी किसी और पुरुष की पत्नी है या कि मेरी कुंठा इस सच्चाई से उपजी थी कि मैं अपनी पत्नी का किसी अन्य पुरुष की प्रेमिका बनना स्वीकार नहीं कर सकता था। 'मेरा मेरा' चीखने वाला कौन-सा पिशाच उस दोपहर कनाट प्लेस के बारामदों में मेरा पीछा करता रहा था?

कामिनी के हर निर्णय और विश्लेषण को उचित और बारीक माननेवाला मैं उस रोज क्यों एक गहरे संदेह से भर उठा था। ऐसा कैसे हो सकता है कि कामिनी का पति मेरा पत्र पढ़कर आहत ही न हुआ हो, मैंने सोचा था। अगर वह आहत हुआ होता तो मुझे कोई पीड़ा न होती। मेरी पीड़ा थी कि कामिनी के पति को पीड़ा क्यों नहीं हुई? क्या कामिनी का पति अपनी उदारता के रथ पर दौड़ता हुआ मुझे रौंदना चाहता है, मैंने सोचा था और मेरा सर्वांग ऐंठने लगा था। क्या तमाम सारी बड़ी-बड़ी बातें करने के बावजूद मैं छोटा हूँ?

मैंने कामिनी के अगले दिन आनेवाले पत्र का इंतजार नहीं किया था और उसी रात अपनी पीड़ा एक पत्र में उँड़ेल कामिनी के नाम रवाना कर दी थी।

अगले दिन कामिनी के जिस पत्र को आना था, वह नहीं आया। उसके अगले दिन भी नहीं और उसके अगले से अगले दिन भी उसका कोई खत नहीं मिला। उसका पत्र मिला पूरे दस रोज बाद। उसका यह पत्र मेरी पीड़ाओं का जवाब लाया था।

'प्रिय कौशल' के तुरंत बाद उसने लिखा था -'हमारे यहाँ विवाह असफल क्यों होते हैं इसे मुझसे बेहतर तुम जानते होगे मेरा अपना विचार इस मामले में यह है कि वे देह

पर टिके होते हैं इसीलिए निरर्थक साबित हो जाते हैं और प्रेम वह इसलिए अपनी चमक और ऊष्मा खो देता है क्योंकि देह के इई गिर्द मँडराने लगता है यह देह बड़ी अजीब चीज है इससे गुजरे बगैर प्रेम का पूर्णता नहीं मिलती और इस पर ठहर जाने से प्रेम नष्ट होने लगता है मैं इस बात को नहीं मानती कि प्रेम सिर्फ देने का नाम है देना तभी हो सकता है जब मिलना भी उसमें निहित हो यह मिलना आकांक्षा नहीं है यह तो प्रक्रिया है जब दो जने दे रहे हैं तो दोनों को मिलेगा भी तो दो में से एक ने भी देना बंद किया और सिर्फ लेना चाला कि समझो प्रेम की राह में बड़ी दुर्घटना घटी मेरे पिछले पत्र से जो यथार्थ तुम तक पहुँचा उसे जानकर तुम्हारे भीतर जो घटा मुझे लगता है उसे तुम ठीक ठीक पकड़ नहीं पाए मुझे यकीन है कि तुम्हें दुख नहीं हुआ ठेस लगी है और ठेस तुम्हें इसलिए लगी कि यथार्थ को तुमने आधे अँधेरे और आधे उजाले में देखा तुम्हें लगा होगा कि मैं दो के बीच बँटी हुई औरत हूँ पूरी रोशनी का सच यह है कि किसी को प्रेम से वंचित देह सौंप देने का कोई अर्थ ही नहीं है अर्थ होता है तब जब इसके पीछे कोई विवशता न हो तो विवशता उसी दुनिया का सच है जिसमें हम जी रहे हैं और जिसमें हमें जीना है यह जानने के बाद कि तुम पुष्पा जी के पति हो मुझे न तो कोई अपराधबोध है न ही दुख क्यों होगा प्रेम करना तो जीवन का सर्वश्रेष्ठ भाव है प्रेम हमें ऊपर उठाता है हममें यह भाव पैदा करता है कि हमारा होना सार्थक है मुझे नहीं लगता कि तुमसे प्रेम करके मैं पुष्पा जी से उनका प्राप्य छीन रही हूँ अगर पुष्पा जी का प्राप्य उन्हें नहीं मिल पा रहा तो इसकी जिम्मेदारी मुझे पर क्यों जाती है वे इतना क्यों नहीं दे सकतीं या दे पातीं जो तुम्हारे प्रेम को उन एक एकाग्र करे ठीक यही स्थिति मेरे संदर्भ में भी है तुम विश्लेषण के बजाय भावुकता पर ठहर गए इसलिए तुम्हारे भीतर पीड़ा का जन्म हुआ प्रेम भावना है मगर भावुकता नहीं है तुम्हारे संदर्भ में भावुकता जँचती नहीं तुमने चेहरा माँगा है और इस माँग के साथ ही मेरे भीतर यह भय उतर आया है कि कहीं तुम देह पर आकर न ठहर जाओ एक उम्र के बाद मैंने वह पाया है जिसकी आकांक्षा थी डरती हूँ कहीं उसे खो न दूँ जिसके कारण पुनर्जीवन मिला है चेहरा भेज रही हूँ

- तुम्हारी कामिनी'

यह एक अजीब पत्र था जिसे पढ़कर मुझे लगा, मैं जगह-जगह से छिल गया हूँ। बजाय इसके कि मेरे भीतर अपने प्रेम को लेकर एक अभिमान पैदा होता, मुझमें एक पागलपन पैदा हुआ। एक जिद पैदा हुई कि ऐसा कुछ करूँ जिससे उसका प्रेम छोटा सिद्ध हो। यह शायद मेरे भीतर का पुरुष था जो स्त्री के विराट स्वरूप को देख आहत हुआ था। अगर कामिनी की विराटता ने मेरे पुरूष को छोटा किया है तो मेरे भीतर वह

क्या है जो स्त्री के इसी विराट का आकांक्षी रहा है। मैंने सोचा था और उलझ गया था। उलझ गया था और यह नहीं सोच पा रहा था कि कामिनी ने अपने प्रेम की जो लकीर खींची है उसे अगर छोटा ही करना है तो अपने प्रेम की बड़ी लकीर खींच दूँ। बड़ी लकीर खींचने के बजाय मैं कामिनी की लकीर की कतर-ब्योंत पर उतर आया। मैंने बिल्ली की तरह दाँव फेंके, लेकिन हर दाँव खाली गया। हर बार मैं कामिनी द्वारा खींची लकीर को कुतरने की कोशिश करता और हर बार लकीर थोड़ी और बड़ी हो जाती। अपनी झुँझलाहट और हताशा में मैं लगातार छोटा होता गया। जिस प्रेम में मुझे ऊँचा उठना चाहिए था उसमें मैं इतना नीचे गिरा कि तल पर पहुँच गया। छोटेपन की सबसे निचली सतह पर पहुँच कर मैंने कामिनी को लिखा - 'मैं अपनी नौकरी को लेकर बहुत तनाव में हूँ। इस नौकरी की वजह से मैं एक भी शब्द नहीं लिख पा रहा हूँ। इसे तुरंत छोड़ देना चाहता हूँ, पर ऐसा कैसे संभव है? तो क्या जिम्मेदारियों की राह में मुझे अपना लेखन कुर्बान कर देना चाहिए?'

जवाब में कामिनी ने लिखा - 'अगर नौकरी सचमुच ही इतनी तनावपूर्ण हो गई है कि तुम्हारी रचनात्मकता को कुतरने लगी है तो इसे फौरन छोड़ दो बिजनेस में जो मेरा हिस्सा है उसमें से एक हजार रुपए महीना मैं तुम्हें बिना कोई दिक्कत उठाए भेजती रह सकती हूँ मेरा जो कुछ भी है वह तुम्हारा है इसलिए इन पैसों स्वीकार करके तुम कहीं से भी छोटे नहीं होओगे मुझे सुख मिलेगा कि तुम्हें तुम्हारा हक मिल पा रहा है उत्तर की प्रतीक्षा में तुम्हारी कामिनी'

जैसे रेत से बना हुआ किला हो। मैं अपने गुंबदों और बुर्जियों सहित ढह पड़ा। मेरा अहं आँखों की राह बह निकला और देर तक बहता रहा। एक भी कण भीतर नहीं बचा उसका। अहं के शेष होते ही गिल्ट अपने आदमकद रूप में झाँकने लगा। समर्पण के सिवा और कोई राह नहीं थी उस आग से बचने की जो आत्मा को पूरी तरह अपनी जद में लिए हुए थी। अपनी तुच्छताओं का निष्कपट बखान किया मैंने और कामिनी को भेज दिया।

कामिनी ने जवाब दिया - 'अब तुम इतने ऊपर उठ चुके हो कि निर्भय होकर तुमसे मिला जा सकता है तुमने बुलाया नहीं है लेकिन मुझे मालूम है कि तुम्हें मेरी जरूरत है इन दिनों मैं अगले पत्र में लिखूँगी कि कब पहुँच रही हूँ'

और उसने लिख दिया है कि वह **27** तारीख को पहुँच रही है। आज **26** है यानी कल।

रात दस बजे घर में घुसने पर जब मैंने पाया कि पुष्पा हमेशा की तरह तनी हुई नहीं है तो थोड़ा अचरज हुआ। घर की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मैंने सोचा था कि उसके किन प्रश्नों

का क्या जवाब दूँगा। सात वर्ष के वैवाहिक जीवन में इतना तो जान ही गया हूँ कि उसके प्रश्न क्या और कैसे होते हैं और उनका क्या और कैसा जवाब दिए जाने से झगड़ा टल सकता है। लेकिन उसने कोई प्रश्न ही नहीं किया तो मेरी समझ में नहीं आया कि जो जवाब मैंने सोचे हुए हैं उनका क्या किया जाए? वैसे, इधर मैं देख रहा हूँ कि पुष्पा के व्यवहार में परिवर्तन आता जा रहा है। क्यों? यह मेरे दिमाग में अभी स्पष्ट नहीं है। इसका एक कारण शायद यह हो सकता है कि जब से मैं के. से जुड़ा हूँ तब से मैंने पुष्पा को लेकर काफी हद तक सुखी या दुखी होना छोड़ दिया है। तो क्या मेरी उदासीनता ने ही पुष्पा के भीतरी संसार को बदला है? और क्या सचमुच ही पुष्पा का भीतरी संसार बदल रहा है? मैं सोच रहा हूँ और उसे गर्दन झुकाए मेज पर खाना लगाते देख रहा हूँ।

आजकल मैं जब भी देर से घर आता हूँ, खाना बाहर ही खा आता हूँ। आज भी मद्रास होटल में डोसा खा आया था। लेकिन उसकी खामोशी को देख मेरी हिम्मत नहीं हो रही है कि उसे बता दूँ। खामोश आदमी इतना भय क्यों जगाता है?

शुरू में ऐसा नहीं था। खाना मैं घर ही खाता था। लेकिन जब मेरे देर से घर आने के विरोध स्वरूप पुष्पा द्वारा खाना न बनाने का सिलसिला चल निकला तो मैं भाग लिया। अपने प्रतिकूल खड़ा संसार मुझमें कष्ट तो पैदा करता है लेकिन मैं उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए संघर्ष करने के बजाय वहाँ से भाग लेता हूँ। अपने बेटे का नाम सिद्धार्थ रखने के पीछे क्या मेरी यही मानसिकता या स्वभाव काम कर रहा था।

ज्यादा समय नहीं हुआ। युद्ध इस घर का एक अनिवार्य और अविभाज्य हिस्सा था। एक बार दफ्तर में मुझसे एक ऐसी भूल हो गई थी जिसके कारण नौकरी पर बन आई थी। तनाव में डूबा और भविष्य को लेकर आधा डरा हुआ मैं उस शाम अपने चंद अंतरंग दोस्तों के साथ शराब पीता रहा था। करीब ग्यारह बजे रात घर लौटा तो पुष्पा हमेशा की तरह योद्धा की मुद्रा में टहल रही थी। उस वक्त मुझे बीवी की नहीं माँ की जरूरत थी। मैंने उस माँ को पुष्पा में पाने की कोशिश करते हुए कहा था, 'आज दफ्तर में एक गड़बड़ हो गई है यार! और मैं थक भी बहुत गया हूँ।'

'भाड़ में गई तुम्हारी गड़बड़, और थक तो तुम रोज ही जाते हो।' तन्नाई हुई पुष्पा ने एक क्रूर वाक्य थमा दिया था। मैं आहत हुआ था और क्रोधित भी लेकिन अपने पर जब्त कर आहिस्ता से बोला था, 'बात तो सुन लो।'

'बातें, बातें, बातें,' पुष्पा चीखी थी, 'इस घर में बातों के अलावा भी कुछ होता है क्या? मैं तंग आ चुकी हूँ।'

'तो?' मैं अचानक ही बेहद रूखा हो आया था।

'मैं अब एक मिनट भी इस घर में नहीं रहूँगी।'

'इससे पहले भी सैकड़ों बार यह बात कह चुकी हो, और लगातार इस घर में बनी हुई हो।' मैंने पहली बार इतनी तीखी बात कही थी और कुर्सी पर बैठ गया था। जवाब में बिफरी हुई पुष्पा साड़ी उतार कर पेटीकोट और ब्लाउज में बिस्तर के भीतर चली गई थी। क्रोध से उसके होंठ फड़क रहे थे। दो मिनट के भीतर ही वह अपनी आदत के मुताबिक नींद के समुद्र में लुढ़क गई थी और मैं हमेशा की तरह अपने पेट की भूख और दिमाग के चीत्कार से लड़ने के लिए अकेला छूट गया था।

उन दिनों सिद्धार्थ पैदा नहीं हुआ था।

'खाना' पुष्पा मेज के सामने आकर खड़ी हो गई है।

'भूख नहीं है।' मैंने वही कहा जो कहता हूँ।

'मीट बनाया था।'

'कोई बात नहीं।' मैंने जवाब दिया और उठकर कपड़े बदलने लगा। पुष्पा खाना उठा ले गई। पहले के दिन होते तो यह घर उठाती। मुझे अपनी असावधानी पर अचरज हुआ कि मैं पुष्पा के परिवर्तन को क्रमशः नहीं पकड़ पाया। फिर मैं खाट पर आ गया। दूसरी खाट पर सिद्धार्थ लेटा था। निश्चित। पुष्पा उसकी बगल में आ चुप लेट गई थी। क्या यह पुष्पा का कोई नया धोखा है, मैंने सोचा और करवट बदल ली।

मैंने अक्सर इन प्रश्नों के बारे में सोचा है कि कितने विश्वासों के टूटने पर आदमी अविश्वासी हो जाता है और कितने धोखे खा लेने के बाद सतर्क? लेकिन न सतर्क हो सका हूँ और न ही अविश्वासी। नतीजा यह निकला है कि मेरे जीवन में उन लोगों की संख्या लगातार बढ़ती चली गई है जिन्होंने मुझे बड़ी शान से धोखे दिए और बड़ी आन से मेरे विश्वासों को कुचल डाला। इसके बावजूद मैं उन लोगों से न तो घृणा कर सका हूँ और न ही उन्हें अपने जीवन में काटकर फेंक सका हूँ। ऐसा भी नहीं है कि दुख मुझे नहीं व्यापता या मैं घृणा और कुंठा से ऊपर स्थित कोई परमहंस हूँ। हाड़-मांस से बने मेरे तन में भी कमजोरियों और दुष्टताओं की मिट्टी से बना कोई कुंठित और घाघ शैतान रहता ही होगा। तो फिर?

तो फिर क्यों होता है ऐसा कि जो मुझे यातना देता है वही अगर कुछ समय बाद मुझसे फिर जुड़ना चाहे तो मैं निश्छल मन से फिर उसके सामने बिछ जाता हूँ? ऐसा भी नहीं है कि चीजें मुझे बिल्कुल ही याद न रहती हों। वे न सिर्फ याद रहती हैं बल्कि रह-रह कर सालती भी है।

एक बार अपने इस स्वभाव पर देर तक विचार करने के बाद मेरे हाथ यह लगा था कि लोगों को क्षमा कर देने के बाद मेरे मन में आत्ममुग्धता का गहरा भाव जन्म लेता है। जो मुझे चोट देता है उसी को फिर से अपनाते हुए मुझे लगता है कि मेरे जैसे लोग इस दुनिया में दुर्लभ होते जा रहे हैं। दुर्लभता के इस अहसास ने मुझे अक्सर रिझाए रखा है। हो सकता है एक कारण यह भी हो जो मोहभंग के ठोस अंधकार में भी मेरे मोह को चकनाचूर होने से बचाता हो।

इस प्रश्न को मैंने के. के सामने भी रखा था कि ऐसा क्यों है मेरे साथ? उसने लिखा - 'जिन्हें अपने साथ रहने की आदत नहीं होती उनके साथ ऐसा संभव है जो क्षमा करता है लोगों को वह दरअसल तुम्हारे भीतर का ईसा मसीह नहीं अपने अकेलेपन से घबरा उठनेवाला बहुत कमजोर आदमी है जो अच्छे लोगों के अभाव के कारण उन्हीं से जुड़ने के लिए अभिशप्त है जो उसे तोड़ते हैं या तोड़ देना चाहते हैं मैं तुम्हारे इसी अकेले और कमजोर आदमी को प्यार करती हूँ क्योंकि ऐसे ही आदमी की करुणा निष्कपट हो सकती है और ऐसे ही आदमी का प्रेम अपने पार जा सकता है'

जब-जब के. का पत्र मुझे मिला है, ऐसा लगा है जैसे मैं बरसों से एक ऐसी गुफा के बाहर खड़ा हूँ जिसमें लोगों और जीवन के रहस्य बंद हैं। गुफा का दरवाजा 'खुल जा के.' कहने से खुलता है जब कि मैं 'खुद जा सिमसिम' को मंत्रों की तरह दोहराता रहा हूँ और इस बात पर हैरान हूँ कि सही वाक्य पा लेने के बाद भी गुफा बंद क्यों है। के. का हर पत्र मुझे इस अचरज में भी डाल देता है कि जिसे आप प्रेम करते हैं उसे उससे भी ज्यादा जान लेने की कला भी क्या प्रेम ही सिखाता है? और क्या दूसरों को उससे भी अधिक जानना कला है? या यह कोई ऐसी अलौकिक शक्ति है जिसे चीन्हा नहीं जा सकता, जिया जा सकता है। के. को यह शक्ति हासिल है और इसीलिए कभी-कभी के. का अब तक न देखा गया शरीर मुझे अपनी कल्पना में एक ऐसी बैसाखी में रूपांतरित होता लगा है जिसकी अनुपस्थिति में मेरी देह चलने-फिरने और सँभल कर खड़े होने से इनकार कर देगी।

मैं जीवन के आरंभ से ही शायद अपाहिज रहा हूँ। बिना सहारे के न खड़ा हो पाता हूँ और न ही ठीक ढंग से सोच-समझ पाता हूँ। एक बैसाखी पाने की चाह मेरे भीतर मेरे

जन्म के साथ ही पैदा हो गई थी शायद! इस चाह को पूरा करने की उत्कट इच्छा ही मुझे गलत लोगों के सामने ले जाकर खड़ा करती रही है। के. से जुड़ने के बाद ही रहस्य भी अनावृत्त हुआ कि मैं समुद्र पार कर सकता हूँ। लेकिन इसके लिए उसकी उपस्थिति जरूरी है जो हनुमान को यह विश्वास दिलाए कि तुममें शक्ति है, तुम समुद्र के पार जा सकते हो। के. इसी तरह की बैसाखी है जो मेरी पंगुता को काल्पनिक ठहराती हुई मुझमें समर्थता का बोध उपजाती है।

के. से पहले मैंने इस बैसाखी को पुष्पा में तलाशा था। अपने पत्रों में उसने ऐसा आभास भी दिया था कि वह बैसाखी बन सकती है और मैं उसके सहारे पर्वत लाँघ सकता हूँ। सहज ही विश्वास कर लेने की आदत के चलते मैंने पुष्पा को विवाह से पूर्व भौतिक स्तर पर जीने की जरूरत ही नहीं समझी। मैं उसे आत्मा के स्तर पर उसके पत्रों में जी ही रहा था इसलिए विवाह से पहले हम आपस में ज्यादा मिले-जुले ही नहीं।

और जब हम एक हो गए तो मैं समूचा एक चीख में बदल गया। पुष्पा सिर्फ लेना जानती थी। प्रेम में देना भी होता है, खोना भी होता है इस बात का अहसास ही नहीं था उसे। वह एक ऐसी पत्नी थी जिसका चुनाव हालाँकि मैंने किया था लेकिन जो निकली बिल्कुल वैसी ही थी जैसी पत्नियाँ आदमी अपने पिता की इच्छा से घोड़ी पर चढ़कर लेने जाता है। जिसने मुझे पत्र लिखे और जिसने मुझसे विवाह किया, ये दो पुष्पाएँ थीं। इतना बुनियादी फर्क कहाँ से जन्मा, मैं सोचता और उलझ जाता। पत्रोंवाली पुष्पा और बीवी बनकर आई पुष्पा के बीच जो छत्तीस का रिश्ता था उसने मेरी रातों की नींद हर ली। बहुत दिनों तक मैं यह सोचकर खुद को सांत्वना देता रहा कि प्रेमिका जब पत्नी बनती है तो शायद ऐसा हो जाता होगा। लेकिन साथ ही मैं यह भी जानता था कि मेरा ऐसा सोचना खुद को तसल्ली देना भर है। वास्तविकता से उसका कोई सरोकार नहीं है।

विवाह का दूसरा वर्ष समाप्त होने को था जब मैंने पुष्पा का रहस्य पा लिया। उस दिन पुष्पा ने भी मेरे साथ पी ली थी। शराब ने अपना असर दिखाया था और पुष्पा मुखर होने लगी थी। पुष्पा को इस तरह खुलता देख मुझे अचानक लगा कि उसे जान लेने का यह एक दुर्लभ क्षण है। प्रेम संबँधी अपना चाहतों और धारणाओं को एक किनारे हटा मैं सहसा ही पहली बार पुष्पा के स्तर पर उतर आया। मेरा यह व्यवहार पुष्पा के लिए अचरच का विषय होना चाहिए था लेकिन उसने इस व्यवहार को अचरज की तरह नहीं एक दुलर्भ सुख की तरह लिया और निहाल हो गई। उसने कहा, 'मुझे गोद में उठाकर नाच'। मैं नाचा। उसने कहा, 'छत पर चल, मैं भागूँगी, तू मुझे पकड़ना।' मैंने ऐसा ही किया। उसने पूछा, 'क्या तू मेरी खातिर इस छत से नीचे कूद सकता है?' मैंने

जवाब नहीं दिया, छत की दीवार पर चढ़ने लगा। उसने मुझे रोका और खुश होकर मेरा बदन चूमने लगी। उसने फरमाइश रखी, 'रोज शाम को दफ्तर से सीधे घर आ जाया कर, मेरा मन नहीं लगता'।

मैंने स्वीकार कर लिया। उसने पूछा, 'हर इतवार को बाजार करने हम साथ-साथ जाया करेंगे?' मैंने हामी भर ली। लगभग दो वर्ष से दबी हुई उसकी तमाम चाहतें सिर उठाती रहीं और मैं उन्हें सहलाता रहा। आखिर जब वह भीतर से रीत गई और उसे यकीन हो गया कि हम जीवन को नए सिरे से और उसकी इच्छाओं के अनुरूप शुरू करने जा रहे हैं तो वह रोने लगी। वह सुख के कारण रो रही थी। उसे इतने गहरे सुख में देख एकबारगी मैं लड़खड़ा गया और सोचने लगा कि जब इसका सुख मुझे भी कहीं छू रहा है तो क्यों नहीं मैं इसका सुख इसके पास बना रहने देता? एक सामान्य, पारंपरिक, नासमझ और स्वप्नजीवी स्त्री की जो इच्छाएँ होती हैं वही इसकी भी हैं। मैं चाहूँ तो इन इच्छाओं को किसी हद तक तो पूरा कर ही सकता हूँ। सुख की जिस लुभानेवाली आकर्षक और राहत देती रोशनी में वह नहा रही थी उसे अनुभव कर एक पल के लिए मैं ठिठक गया। लेकिन मैंने उस वक्त सोचा, मुझे इसके सुख से बैर थोड़े ही है।, मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि क्या पहलेवाली पुष्पा के सुख कुछ दूसरे ही थे। पत्रोंवाली पुष्पा की नजरों से दखें तो इस पुष्पा के सुख-दुख इतने बौने और हेय हैं कि दया आती है। ऐसा क्यों है, मैं यही तो जानना चाहता हूँ और यही क्षण है जब इस तिलिस्म को खोला जा सकता है। मैंने सोचा और उसकी पलकों को चूमते हुए पूछा, 'तुम इतने खूबसूरत पत्र कैसे लिख लेती थीं?'

उस क्षण वह आह्लाद और हर्ष की गुनगुनी धूप में आँख बंद किए स्वयं को समूची आस्था के साथ दे रही थी। निष्पाप ढंग से, किसी नींद में चलनेवाली स्त्री की तरह बोली, 'नाराज तो नहीं होओगे?'

'बिल्कुल नहीं।' मैंने उसके माथे को चूम लिया, जैसे उसे अभय दिया हो।

'वे पत्र मैंने नहीं पल्लवी ने लिखे थे।'

'पल्लवी?' मेरा नशा उतरने लगा।

'मेरी एक सहेली थी। मैं तुम्हारे पत्र उसे सौंप आती थी। वह उनका जवाब लिखकर दे जाती थी। मैं उस जवाब की अपनी राइटिंग में नकल करके तुम्हें पोस्ट कर देती थी। असल में क्या है कि मैं तुम्हें किसी भी कीमत पर पा लेना चाहती थी। हमारे हिंदी के प्रोफेसर ने बताया था कि तुम बहुत प्रसिद्ध आदमी हो, बड़े-बड़े अखबारों में तुम्हारा

नाम छपता है। जिस कहानी को पढ़कर मैंने तुम्हें पहला पत्र लिखा था वह कहानी मुझे सर ने ही पढ़ने को दी थी, वह पहला पत्र भी मैंने पल्लवी से ही.....'

मैं तब तक उसके ऊपर से लुढ़क कर बगल में गिर पड़ा था। जैसे चौक्का लगाने के लिए सन्नद्ध और सतर्क खड़े बैट्समैन के माथे पर तेजी से आती हुई गेंद लग जाए। फटा हुआ माथा लिए चोट के दर्द से काँप रहा था मैं, जब पुष्पा आँख खोलकर मेरी ओर पलटी।

'तुम शब्दों से इतना प्यार क्यों करते हो?' उसने तमककर और घनघोर लापरवाही के साथ कहा, 'खत भले ही पल्लवी ने लिखे पर प्यार तो मैंने ही किया न तुम्हें।'

मैं मुस्कराया। कुछ इस तरह जैसे मरने जा रहा बीमार आदमी यह दिलासा देने के लिए मुस्कराता है कि मुझे कुछ नहीं हुआ, अभी ठीक हो जाऊँगा। मुस्कराकर आँखें बंद करते हुए अवसाद में डूबा मेरा मन रेशा-रेशा बिखर गया। उन बिखरे हुए रेशों को बड़े यत्न से जोड़ते हुए मैंने पाया कि मैं पल्लवी को पाना चाहता हूँ। पल्लवी चाहिए मुझे चाहे वह कानी, चेचक के दागोंवाली, पीलियाग्रस्त, कैंसर से पीड़ित या तीन बच्चों की मोटी और बेडौल माँ ही क्यों न हो गई हो इस वक्त तक। इस रूपवती, सुगठित देह और उन्नत वक्षों वाली पुष्पा को ले जाए कोई और पल्लवी को ला दे। मैं आँख बंद किए रहा और मेरी यातना बर्फ बन-बन कर पानी होती रही। बर्फ के पानी में डूबी मेरी चेतना ने तब पुष्पा का क्षमा कर दिया। द्वंद्व मिट गया था। अब पल्लवी को खोजना था।

यह पल्लवी मिली मुझे के. में। के. जो कल सुबह दस बजे मुझे शाहजहाँ होटल में मिलेगी। कैसा अनुभव होगा वह?

'कब तक जागते रहोगे?' सहसा ही बगल से आवाज आई तो मुझे पता चला कि पुष्पा जाग रही है। यह भी एक अनुभव था। बिस्तर पर लेटते ही खर्राटे भरनेवाली पुष्पा की नींद कौन ले गया? क्या पुष्पा की भी नींद छीन सकता है कोई?

'सोईं नहीं?'

'तुम जो जाग रहे हो।'

यह दूसरा अनुभव था।

'मेरा ख्याल कैसे आ गया आज?' मैंने कटाक्ष किया। उसके संवाद को इतनी आसानी से मैं अनुभव नहीं मान सकता था।

'मैं भी तुम्हारा ख्याल नहीं रखूँगी तो तुम जियोगे कैसे?' पुष्पा ने गहरे दुख के साथ कहा, 'काश, तुम भी सोच पाते मेरे जीने के बारे में। कम से कम साल में एक बार ही सोच लिया करो ताकि बाकी के तीन सौ चौंसठ दिन मैं उस एक दिन के इंतजार में काट दिया करूँ। आज मेरा जन्मदिन था।'

जन्मदिन? जैसे किसी ने मुझे मेरे ही घर में आकर छोटा कर दिया हो। मैं चौंककर उठ बैठा। ऐसा क्यों हुआ कि मैं भूल गया? पर अब कुछ नहीं हो सकता था। दुर्घटना घट चुकी थी। मेरा मन रोने-रोने को हो आया। मेरे मन में हमेशा यह भाव बना रहता है कि मेरी वजह से किसी को यातना नहीं मिलनी चाहिए। कम से कम ऐसी यातना जिसकी जिम्मेदारी यातना पानेवाले पर न जाती हो। मुझे हैरानी हुई कि अपने जन्मदिन की पंद्रह दिन पहले से डुगडुगी पीटने वाली पुष्पा इस बार इतनी खामोश क्यों रही? हमेशा 'मेरा मेरा' रटनेवाला कोई आदमी अपने बारे में एकाएक बोलना बंद कर दे तो वजह तो ढूँढ़नी ही चाहिए। क्या पुष्पा सचमुच बदल रही है? मैंने सोचा और डर गया। नहीं, अब मैं नहीं चाहता कि पुष्पा बदल जाए, वैवाहिक जीवन के सात वर्षों में मैंने लगातार यह चाहा है कि पुष्पा बदले ताकि मेरी पल्लवी की निरर्थक खोज पर विराम लगे। लेकिन अब नहीं। अब अगर पुष्पा पल्लवी बनने लगी तो मैं के. को पूरा समर्पण कैसे दे पाऊँगा?

'क्षमा कर देना!' मैंने अफसोस के साथ कहा : 'मैं इस तारीख को याद नहीं रख पाया।'

'कोई बात नहीं' पुष्पा ने धीरे ओर प्यार से कहा : 'तारीख को याद रखना ही प्रेम नहीं है।'

यह तीसरा अनुभव था। और चौथा अनुभव उपलब्ध करने की मेरी आकांक्षा नहीं थी। लेकिन तुरंत ही मुझे लग गया कि मैं झूठ सोच रहा हूँ। मैं न सिर्फ चौथा बल्कि पाँचवाँ, छठा और सातवाँ अनुभव भी पाने के लिए व्याकुल हूँ।

आहिस्ता से पुष्पा के कान में 'अट्ठाइसवीं सालगिरह मुबारक हो, कहने के बाद मैंने उसकी पलकों को चूम लिया। उसकी आँख से एक बूँद लुढ़की और गाल पर फैल गई। मैंने उस बिखरी हुई बूँद को अपने होठों से समेट लिया और पुष्पा बाकायदा सिसकने लगी।

उसके चेहरे को अपनी छाती में छुपाकर उसके बालों को सहलाते हुए मुझे लगा, कुछ समीकरण ऐसे हैं जिन्हें मैं शायद जीवन-भर सुलझा नहीं सकूँगा।

पुष्पा अब भी सिसक रही थी और मैं सोच रहा था कि पुष्पा के बालों को प्यार से सहलाता हुआ जो शख्स के. का इंतजार कर रहा है वह आखिर चाहता क्या है? मानव संबंधों की बारीकियों, सामर्थ्य और सीमाओं को दूर तक जाननेवाला (या यह भ्रम रखनेवाला) मैं क्या एक ही स्त्री में सब कुछ पा लेने का आकांक्षी हो उठा हूँ? अगर हाँ तो इस बात की क्या गारंटी है कि के. में मुझे सब कुछ मिल ही जाएगा? अगर यह सच है कि पूरा सुख अस्तित्व ही धारण नहीं करता तो पूरे सुख को पाने का अभिलाषी मेरा मन क्या किसी भी सुख में मुक्ति नहीं पा सकेगा?

मैं सोच रहा था और सात महीने से पुष्पा के प्रति निरपेक्ष मेरे मन में पुष्पा के प्रति ढेर सारा प्यार उमड़ा पड़ रहा था।

यह प्रेम है या खालिस करुणा? मैंने विश्लेषित करने का प्रयत्न किया और पाया कि 'केवल करुणा' कहकर मैं प्रेम के सच को नकार नहीं सकता। खुद को धोखा दे सकता हूँ लेकिन प्रेम के अस्तित्व से इंकार नहीं कर सकता। क्या पिछले सात महीनों में मुझे के. से जो प्रेम मिला है मैं उस प्रेम को ही पुष्पा को सौंप रहा हूँ या इसका कारण स्वयं पुष्पा में ही निहित है। या कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं के. को भी पाना चाहता हूँ और पुष्पा को भी खोना नहीं चाहता। क्या पुष्पा को 'न खोना' चाहनेवाले मेरे मन में यह आशंका है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं पुष्पा को भी खो दूँ और के. को भी न पा सकूँ। क्या अगाध विश्वास के साथ-साथ प्रेम संदेह और विश्वास को भी जन्म देता है। क्या प्रेम आदमी को बड़ा बनाने के साथ ही छोटा भी बनाता है? अगर नहीं तो में यह क्यों चाहता हूँ कि के. विधवा हो जाए।

इतने हृदयहीन सच और सोच को अपने सामने पा मैं सहसा ही गहरी ग्लानि से भर उठा। के. जो मुझसे और मेरे सुखों से इतना गहरा प्रेम करती है, भी क्या कभी-कभी पुष्पा की मृत्यु चाहती होगी? मैंने सोचा ओर पुष्पा को इस तरह कसकर अपने सीने से चिपटा लिया मानों मृत्यु सचमुच उसे लेने आ पहुँची हो। पुष्पा को खो देने की कल्पना भर से जो भयभीत है क्या यह वही अपने अकेलेपन से घबरानेवाला कमजोर आदमी है जिसको के. ने खोजा है मेरे भीतर।

प्रश्न आपस में इस तरह उलझ गए थे कि तनाव से मेरा दिमाग फटने लगा। पुष्पा को बगल में लिटाकर मैं भी बिस्तर पर पसर गया और सोचने लगा कि क्या इस वक्त के. भी जाग रही होगी।

पुष्पा सो गई थी।

एक शादीशुदा आदमी एक शादीशुदा स्त्री से मिलने आया है। फिर भी यह हृदय अवयस्क दिनों के प्रेम की तरह क्यों थरथरा रहा है। क्यों बदन के रक्त में सनसनी दौड़ रही है। क्यों पलकें भारी हुई जा रही हैं और क्यों दो कदम आगे बढ़ रहे हैं तो एक कदम पीछे हट रहा है। और क्यों इस सबसे एक अजीब-सी सुखद अनुभूति हो रही है। ऐसा क्यों लग रहा है जैसे बरसों से बंद कोई परिंदा पिंजरा तोड़कर उड़ गया हो खुले आकाश में। क्या के. भी इसी अनुभव को जीती हुई प्रतीक्षातुर होगी? मैं सोचे जा रहा हूँ और स्कूटर 'शाहजहाँ' जानेवाली सड़क पर भागा जा रहा है - निर्बाध। सुबह के पौने दस बजे हैं। आज सत्ताईस तारीख है।

तारीखें इतिहास में इसी तरह जाती हैं शायद! बने, यह तारीख मेरे जीवन की ही ऐतिहासिक तारीख बने। मैं इस तारीख को फंतासी की तरह जीकर इतिहास के हवाले कर जाऊँगा। राजाओं के बारे में लिखने वाला इतिहास आज एक परिंदे का सच लिखेगा।

मगर अफसोस। शुरू होने के लिए जो बिंदु के. ने चुना है वह बहुत क्रूर है। 'शाहजहाँ' के सामने स्कूटर के रुकते ही मुझे ऐसा लगा। राजधानी का पाँच सितारा होटल। जबकि मैं अपनी इस तीस बरस की उम्र में तीन सितारा होटल में भी पाँव नहीं रख पाया था।

मेरे मगरूर व्यक्तित्व की जमीन पर सहसा ही एक नवजात हीनताबोध ने सिर उठाया।

अपने को संयत करते हुए मैंने अपनी आँखों के सामने से गुजरे उन तमाम शब्दों को बड़ी शिद्दत से पुकारा जिन्होंने सिखाया था कि प्रेम में कोई वर्ग नहीं होता। विवेक नहीं होता। संदेह नहीं होता। हीनता नहीं होती क्योंकि प्रेम तो हमें इन भावों के पार ले जाता है। पर उन शब्दों ने एक बार मुड़कर भी नहीं देखा कि सांत्वना मिल पाती। बिना किसी शब्द के मुझे भीतर प्रवेश करना था और आज की तारीख को इतिहास को सौंपना था।

'कुछ दूर आगे जाकर तुम्हें एक आग की नदी मिलेगी। उस नदी में बिना किसी भय के कूद पड़ोगे तो आग शीतल जल में बदल जाएगी। नदी में कूदते ही पीछे से तरह-तरह की आवाजें तुम्हें पुकारेंगी लेकिन खबरदार, भूल से भी पीछे मत देखना वरना नदी सचमुच आग हो जाएगी। नदी पार करते ही तुम्हें किनारे पर वह स्त्री मिलेगी जिसे एक बार देखा है और बार-बार देखने की तमन्ना है। तुम उस स्त्री के पास जाना और

मेरा हाल बताना। वह पसीज जाएगी। क्या तुम मेरा यह काम नहीं कर दोगे? मैं उस स्त्री का विरह सहन नहीं कर सकता। अगर तुम नहीं जाओगे तो मैं यहीं पत्थर से अपना सिर टकराकर जान दे दूँगा। मेरे हाल पर तरस खाओ और जाओ। और पहले सवाल का जवाब खोजने निकला हातिमताई उस दिशा की ओर बढ़ने लगा जहाँ आगे चलकर आग की नदी थी।'

मैंने देखा। मैं 203 नंबर कमरे के सामने खड़ा घंटी बजा रहा हूँ और के. से होनेवाली पहली मुलाकात के लिए खुद को बटोर रहा हूँ। बहुत सोचने पर भी मैं तय नहीं कर पा रहा था कि जिस के. को मैं पिछले सात महीने से अपनी साँसों की तरह से ले और छोड़ रहा हूँ। वह जब कुछ ही क्षण बाद सामने होगी तो मैं क्या करूँगा? क्या करना चाहिए मुझे?

मेरा असमंजस मुझ पर हावी था कि दरवाजा खुल गया। चित्र में जड़ी और खतों की इबारत में बसी के. सामने थी जैसे ग्रीक त्रासदी की कोई नायिका हो। गोरे रंग में साँवला पुट। गहरी आँखें। उन्नत वक्ष। सफेद साड़ी ब्लाउज में लिपटी सुगठित देह। पतली-लंबी उँगलियाँ और गर्वीला चेहरा लेकिन अपने गर्व को कायम रखने के संघर्ष में भीतर से टूटा हुआ और इसीलिए उदास। यह सचमुच की के. थी, उस चित्रवाली नहीं जिसे भेजते हुए उसने लिखा था 'तुमने चेहरा माँगा है और इस माँग के साथ ही मेरे भीतर यह भय उतर आया है कि कहीं तुम देह पर आकर न ठहर जाओ।'

'तुम मुझे इतना छोटा समझती थीं के.' मैंने उनकी कनपटियों के पास दो चार सफेद हो गए बालों को देखते हुए सोचा 'कि चित्रवाली के. का अपने सामने खड़ी के. से मिलान करने पर विमुख हो जाऊँगा। मैंने देह नहीं चाही है। देह तो है मेरे पास।'

मैं सोच रहा था और के. सुन रही थी मानो। मैंने अभी तक यह नहीं बताया था कि मैं कौशल हूँ। मगर वह पी रही थी मुझे और मैं अनुभव कर रहा था कि सात महीने से प्यासी के. मुझे किस तरह टूटकर पी रही है।

'आओ।' आखिर रुकी और उसके पतले लेकिन भरे हुए होंठ हिले और मेरे भीतर का परिंदा पंख फड़फड़ाने लगा। भीतर से कोई आवाज देने लगा कि तुम भी इसे पियो।

लेकिन तब तक के. मुड़ चुकी थी।

'आओ।' उसने गर्दन मोड़कर कहा और मैं मंत्रमुग्ध की तरह कमरे में प्रवेश कर गया।

'बैठो!' उसने कहा और मुस्कराई। यह वही मुस्कराहट थी जो मैंने उसके चित्र में देखी थी। उस चित्र में जो कुछ ही समय पहले उसने मुझे भेजा था लेकिन जो यकीनन आज से सात-आठ बरस पुराना रहा होगा। लेकिन इन सात-आठ वर्षों का कोई भी असर उसकी मुस्कराहट पर नहीं पड़ा था।

'यह मुझसे कितनी बड़ी होगी?' मैंने सोचा और उसके मुस्कराते चेहरे को देखा।

'बैठो न।' उसने फिर कहा और मैं सामने पड़े सोफे पर बैठ गया। सोफे पर बैठते समय मैंने कंधे पर लटके अपने बैग को सोफे से टिका कर जमीन पर रख दिया।

'लाओ मुझे दो। मेज पर रख दूँ' वह फिर मुस्कराई।

'नहीं, ठीक है।' मैंने जवाब दिया और कमरे का मुआयना करने लगा। कमरे में चोरी-चोरी घूमती मेरी नजर जैसे ही बाईं ओर पड़े डबलबैड पर गई मेरे भीतर का परिंदा छटपटाने लगा। जैसे सात समंदर पार बड़े से जंगल को लाँघकर आनेवाले भुतहा महल के तहखाने में तीस फुट ऊँचाई पर लटके पिंजरे में बंद उस तोते की गर्दन कोई ऐंठ रहा हो जिसमें परिंदे की जान है।

डबलबैड पर एक लंबा-चौड़ा पुरुष करवट बदलकर लेटा हुआ था। मेरी उपस्थिति से बेखबर। लेकिन मेरी उपस्थिति को अनुपस्थित सिद्ध करता हुआ। उस पर से होती हुई मेरी आहत नजर के. की आँखों से टकराई तो वह सकुचाकर बोली - 'मेरे पति।'

पति? मुझे लगा मैं आहिस्ता से उठा हूँ और कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर निकल गया हूँ। निरर्थकता के इस बोध को जीते हुए भी मैं लेकिन सोफे पर बैठा हुआ था। क्यों? क्या अब भी कोई आशा है? क्या जीवन को अथ से आरंभ करने जा सकता हूँ मैं? कहाँ जाऊँगा जब लौटकर फिर यहीं आना है।

पति जाग गया था और किसी जंगली जानवर की तरह आँखें मींच कर और मुँह फाड़कर जम्हाई लेने में तल्लीन था। मुझे लगा? दूसरे की उपस्थिति ही आदमी को शालीन बनाती है। शायद अपने एकांत में मैं भी इसी तरह आदिम असभ्यता को जीता होऊँगा।

तो यह है के. का वर्तमान। मैंने सोचा और के. की तरफ देखा जो इस बीच विस्मयकारी तरीके से बदल गई थी। उसका स्नेहिल चेहरा तन गया था और आँखों के तमाम कोमल भाव कठोर पड़ गए थे। मैं तेजी से स्वयं को एक ऐसे दृश्य के लिए तैयार करने लगा जिसमें कोई भी हादसा घट सकता था।

लेकिन आश्चर्य, कोई भी हादसा नहीं घटा। के. का पति उठा, बिस्तर पर बैठा। मैंने विश की। उसने कोई जवाब नहीं दिया। वह बिस्तर से उतरा और सूटकेस के कपड़े निकालकर बाथरूम में चला गया। मैं चुप उसके आने का इंतजार करता रहा। वह कपड़े पहनकर आया और एक उपेक्षित-सी 'हैलो' फेंककर सामने वाले उस सोफे पर बैठ गया जिस पर के. बैठी थी। मैंने सहारे के लिए अपने बैग से सिगरेट निकाली और शालीनता से बोला, 'मैं कौशल...'

'खुशी हुई मिलकर।' वह भारी आवाज में बोला और मेरी सिगरेट को घूरने लगा।

'इन्हें सिगरेट के धुएँ से एलर्जी है।' यह के. थी।

मैंने बिना जवाब दिए सिगरेट वापस पैकेट में रख ली। मरते हुए परिंदे की चीख में साफ सुन पा रहा था। सात समंदर पार रहने वाले तोते की जरूर ही आँखें फट गई होंगी और जीभ बाहर निकल आई होगी। मरी हुई हर चीज कितनी कुरूप हो जाती है। फिर चाहे वह परिंदा हो या स्त्री।

मैं खुद को सँजोने का प्रयत्न कर ही रहा था कि के. का पति खड़ा हो गया और लापरवाही से बोला, 'मैं नीचे रेस्त्राँ में नाश्ता लूँगा, फिर वहीं से नार्थ एवेन्यू चला जाऊँगा। दो-एक दोस्तों से मिलना है। जब से एम.पी. हुए हैं, मुलाकात ही नहीं हुई है।'

के. ने कुछ नहीं कहा। मैं समझ गया, यह शख्स खानदानी रईस नहीं है। नीचे से उठकर ऊपर गया है। अपनी महत्ता का प्रदर्शन भी ठीक से करना नहीं जानता।

उसके विरोध में और ज्यादा बातें सोचने से मैंने खुद को सहसा ही रोक लिया। मुझे लगा, इस तरह उसके विरुद्ध हो जाने से मैं उसका प्रतिद्वंद्वी हो जाऊँगा। जबकि मैं प्रतिद्वंद्वी नहीं था। के. की दुनिया में हम दोनों की अलग-अलग सत्ता थी। और उसकी तो शायद सत्ता भी नहीं थी। वह तो के. की सत्ता में एक अदना-सा कर्मचारी भर होगा शायद।

मैंने पाया कि खुद को रोकने के बावजूद मैं लगातार उसके खिलाफ जा रहा हूँ तो सोचना छोड़कर फिर से कमरे की भव्यता को पढ़ने लगा।

'सुनो, तुम सिगरेट पी लो!' आवाज के. की थी। मैंने गौर किया, जिसे धुएँ से एलर्जी थी, वह कमरा छोड़ चुका था। तुरंत मेरे भीतर एक बच्चा रूठ गया। मैंने के. को देखे बिना कहा, 'इच्छा नहीं है।'

'प्लीज' के. की आवाज से लगा कि उसका चेहरा कातर हो गया होगा। देखने पर पता चला मैं सही था। इस वक्त के. की आँखों में उन खतों की इबारत क्रमशः मूर्त हो रही थी जो मेरी पूँजी थे। मैंने सिगरेट निकालकर सुलगा ली। के. के चेहरे का तनाव घुलने लगा। मुझे उसके चेहरे के तनाव को घुलता देख यक-ब-यक पुष्पा के उस सुख की याद आ गई जो मैंने उसे दिया था।

मैं स्त्रियों को सुख दे सकता हूँ यह सोचकर मुझे अपने पर अभिमान हुआ। लेकिन स्त्रियाँ? यह जो मुझसे अलौकिक किस्म का प्रेम करनेवाली अभी कुछ क्षण पहले अपने पति की एलर्जी का ख्याल रख रही थी क्या सचमुच उसे प्रेम से वंचित देह सौंप पाती होगी?

'यह प्रेम नहीं आदत है।' के. ने कहा। वह जैसे मेरे सोचे हुए को सुन रही थी, 'एक अरसे के बाद पति स्त्री की आदत में शुमार हो जाता है।'

'और पत्नी आदमी की आदत में।' मैंने हाजिर जवाबी दिखाई लेकिन तुरंत ही अपनी नजरों में छोटा हो गया। मैं यहाँ झगड़ा करने आया हूँ या के. को जीने। क्या पुष्पा का यह आरोप सही है कि मैं उत्तेजित होने के मौके तलाशता रहता हूँ और दुखी होने के भी।

'पुष्पा जी कैसी हैं?' के. ने पूछा तो मुझे लगा, मेरा छोटापन रेखांकित किया गया है। के. एक व्यक्ति की सशरीर उपस्थिति को तिरोहित कर रही थी और मैं एक अनुपस्थित स्त्री को सशरीर उपस्थित किए दे रहा था।

'पुष्पा मजे में है। तुम अपने पति के साथ क्यों आई हो?' मैं सीधे सवालों पर उतर आया। अपने छोटेपन से बचने का यही एक तरीका था।

'उनका तुम्हें देख लेना जरूरी था। मैं अपने प्रेम को अपराध की तरह नहीं जी सकती।' के. ने कहा। उसके चेहरे का गर्वीला भाव लौट रहा था।

'तुमने तो लिखा था वह आहत नहीं होते लेकिन जिस तरह वह यहाँ से गए हैं...'

'मैंने तब गलत सोचा था', के प्रश्न पूरा सुने बिना ही जवाब देने लगी, 'जरूरी तो नहीं है कि मैं हमेशा सही भविष्यवाणियाँ ही करती रहूँ।'

भविष्यवाणियाँ शब्द पर वह मुस्कराई है, यह मैंने देख लिया था। उसके जीवट पर मुझे अचरज हुआ। सचमुच, के. है ही ऐसी कि उसका प्रेम पाकर खुद को धन्य समझा जाए।

'मुझसे मिलकर निराश तो नहीं हुए?' के पूछ रही थी।

'क्यों भला?' मैं समझा नहीं।

'मैं सन चवालिस में पैदा हुई थी।' के. मुस्कराई।

मैंने तुरंत जोड़ लिया कि के. इस समय इकतालिस बरस की है। यानी मुझसे ग्यारह वर्ष अधिक।

'स्त्रियाँ अपनी उमर कम बताती हैं, तुम ज्यादा क्यों बता रही हो।'

मेरे जवाब पर वह खुलकर हँसी फिर शरारती हो उठी, 'स्त्री कोई भी हो अपनी प्रशंसा पर प्रसन्न होती है। चाय यहीं लोगे या नीचे।'

'यहीं ठीक है?' मैं भी मुस्कराया। शायद यहाँ आने के बाद पहली बार, 'वो क्या है कि भीड़ में मैं औपचारिक हो जाऊँगा।'

के. फोन पर चली गई। वहीं से पूछा उसने, 'कुछ खाने को लोगे?'

'नहीं।'

के. ने फोन पर हाफ सैट चाय का आदेश दिया और वहीं से बोली, 'यहाँ आ जाओ। सोफे पर भी तुम औपचारिक ही रहोगे।'

मैंने चौंककर देखा लेकिन उसके चेहरे पर या आँखों में किसी किस्म का संकेत नहीं था। सिर्फ मेरे बारे में 'जानकार' होने का दर्प था। क्या मैं इसी दर्प को प्यार करता हूँ। मैंने सोचा और खड़ा हो गया। इस बीच के. आराम से बैड पर पसर गई थी। मैं पायताने जा कर बैठ गया, सकुचाता-सा।

'अरे, यहाँ तो तुम ज्यादा औपचारिक हो गए।' के. खिलखिला कर हँस पड़ी। मैं जूते उतारकर आल्थी-पाल्थी मार बिस्तर पर आ गया।

'तो तुम हो के.।' के. ने मेरा दायाँ हाथ पकड़ लिया और मेरी लंबी-पतली उँगलियों को सहलाने लगी जैसे यकीन करना चाहती हो कि मैं सचमुच हूँ और उसी के सामने हूँ।

स्पर्श। के. का स्पर्श। मैं रोमांचित हो गया। एक गहरा सुख मिला मुझे इस स्पर्श में उत्तेजना नहीं एक ऐसी शीतलता थी जो भीतर तक सुकून पहुँचाती है।

'के. ... तो तुम हो!' मैंने भी उसकी लंबी-पतली उँगलियों को अपने हाथ में लेकर देखा। वे कलाकारों जैसी थीं।

'अपना नाम तुमने कौशल कब रखा?'

'उसी क्षण जब तुम्हारा नाम कामिनी रखा जा रहा था।'

'सच!' के. की आँखें स्वप्निल हो गईं।

कुछ ही क्षणों में उसकी स्वप्निल आँखें नीले आसमान में रूपांतरित हो गईं। मैंने देखा, उस आसमान के नीले विस्तार में दूर एक परिंदा उन्मुक्त उड़ रहा था - निर्भय, निःसंकोच और निर्बाध।

'तुम्हारी आँखों में एक परिंदा है।' मैंने कामिनी से कहा।

'यह तुम्हारी आँखों का परिंदा है।' कामिनी ने कहा, 'मेरी आँखें तो आईना हैं।'

और मैंने उस आईने को चूम लिया।

अगर कामिनी की आँखें आईना हैं और उनमें उड़ते हुए जिस परिंदे को मैं देख पा रहा हूँ वह दरअसल मेरी आँखों में उड़ता परिंदा है तो मेरी आँखों में उड़ते जिस परिंदे को कामिनी ने देखा है क्या वह दरअसल खुद कामिनी का परिंदा है और क्या मेरी आँखें भी आईना हैं। कामिनी को प्रेम करनेवाला मैं क्या असल में अपने आप से प्रेम करता रहा हूँ। दूसरे का इस कदर स्वीकार कि वह दूसरा रह ही न जाए, ही क्या प्रेम है, मैं सोच रहा था और कामिनी एक ऐसे मुग्ध भाव से मुझे देख रही थी जिसमें अभिमान उपस्थिति था। मनोवांछित पा लेने की उपलब्धि क्या ऐसे ही अभिमान को जन्म देती है।

तभी एक कोयल कूकने लगी।

यह कूक तुम्हारे सीने से उठी है कामिनी या मेरे भीतर कोई कोयल जागी है। मैंने पूछा नहीं सिर्फ सोचा। मेरे सोचे हुए को मेरी आँखों में पढ़कर कामिनी मुस्कराई और बोली, 'वेटर होगा।'

'ओह!' मेरे होंठ गोल हो गए। शायद विस्मय से या शायद अपने अज्ञान के अफसोस से। या फिर शायद अपनी कल्पना के खंडित होने से।

जो कूक मैंने सुनी थी और जिसे सुन एक कोयल को अपने और कामिनी के हृदय में आकार लेते मैंने देखा था अभी-अभी, वह दरअसल इस कमरे की घंटी थी जिसे चाय लानेवाले वेटर ने बजाया था।

'कामिनी ने दरवाजा खोल दिया। वेटर ही था। मैं वापस सोफे पर आ गया। चाय मेज पर रखने के बाद वेटर चाय के बिल पर कामिनी के दस्तखत लेने लगा। बाईस रुपए पचास पैसे का बिल था। मेरे आधे दिन की तनख्वाह। मेरे प्रेम पर जैसे फालिज का आक्रमण हुआ हो। एक उदास अँधेरे में डूबते अपने मन को सँभालते हुए मैंने गहरे दुख के साथ सोचा, मैं इतनी छोटी-छोटी बातों से आहत क्यों हो जाता हूँ? प्रेम मुझे मेरे वर्ग से बाहर क्यों नहीं खींच पा रहा है?

'चीनी?' के. पूछ रही थी।

'दो चम्मच।' मैंने जवाब दिया और उसे चाय बनाता देखता रहा। वह बहुत शालीन दिख रही थी।

क्या यह शालीनता और नफासत स्त्री में उसी वक्त तक रहती है जब तक वह प्रेमिका रहती है। अगर हाँ तो यह बहुत दर्दनाक है। पत्नी होते ही स्त्री क्रमशः फूहड़ता और असभ्यता और बर्बरता की दिशा में क्यों बढ़ती है? मैं सोच रहा था लगातार और देख रहा था कि चाय पिलाने से लेकर प्रेम करने तक की यात्रा के बीच पुष्पा को कहीं भी यह ध्यान नहीं रहता कि यह समूची यात्रा एक ऐसी कला है जिसको जानने के कारण ही स्त्री पुरुष को रिझाती और झुकाती आई है। मैंने यह भी देखा कि इसी तरह की किसी तुलना में के. भी तल्लीन है। क्या तुलना के इस अभिशाप से पुष्पा और कामिनी का पति बच नहीं सकते?

मैं सिगरेट निकालने लगा।

'चाय पी लो पहले।' यह के. थी। उसके स्वर को आदेशात्मक ध्वनि ने मुझे पुष्पा की याद दिला दी। इस बार तुलना के लिए नहीं, साम्य के लिए। यह जो सुना था मैंने स्वर, उसमें पत्नी जैसा अधिकार भाव था, लेकिन यह निकला था कामिनी के कंठ से, जो किसी और की पत्नी थी।

मुझे दुख हुआ।

'चुप क्यों हो?' आहिस्ता से पूछा के. ने।

'सोच रहा हूँ कि...' मैंने अंततः सिगरेट जला ही ली। सिगरेट न हो तो मेरे वाक्य बिगड़ने लगते हैं। दफ्तर में बॉस के कमरे में सिगरेट साथ नहीं होती इसीलिए मेरे जवाब उसे संतुष्ट नहीं कर पाते। केबिन से बाहर आकर जब सिगरेट पीता हुआ अपनी मेज पर बैठा होता हूँ तो मुझे याद आता है कि बॉस के इन-इन प्रश्नों का ये-ये जवाब दिया जा सकता था।

'क्या सोच रहे हो?' के. शायद व्यग्र थी।

'यह मुलाकात ठीक नहीं रही।' मैंने गहरा कश लिया।

'क्यों?' के. का पूरा बदन हिल गया। यातना का एक महाकाव्य उसकी आँखों में पढ़ा जा सकता था। मुझे दुख हुआ। मेरा मकसद यह नहीं था, मैं तो अपनी ही एक गुत्थी में उलझ गया था। मेरी समस्या यह थी कि इस मुलाकात ने मुझे जो गहरा सुख दिया था वह कामिनी के चले जाने के बाद एक दुखभरी स्मृति में बदल जाने वाला था। कामिनी से मिल लेने के बाद उसके बिना रहने की कल्पना ने मुझे भयभीत किया हुआ था।

मेरे साथ ऐसा ही होता है। भविष्य की चिंता ने मेरे वर्तमान को अक्सर दबोचे रखा है। आने वाला कल मेरे आज को अक्सर लीलता रहा है। भविष्य के दुःखों ने मेरे वर्तमान सुखों का यातना में बदला है हरदम। अभी भी ऐसा ही हुआ। के. मेरे सामने है और मैं के. रहित समय की कल्पना से पीड़ित हूँ।

'तुम्हारी अनुपस्थिति अब ज्यादा दुख देगी।' मैंने धीमे-धीमे कहा, 'तुम्हारे साथ का सुख जब तक जाना नहीं था तब तक उस दुख को भी नहीं जाना था जो तुम्हारे न रहने पर मुझे पकड़ लेगा। कब जा रही हो तुम!'

'परसों सुबह की फ्लाइट से।' कामिनी ने जवाब दिया, 'लेकिन चले जाने के बावजूद मैं यहीं रहूँगी। नहीं?'

'हाँ। सुनने में अच्छा लगता है कि तुम्हारे चले जाने पर यहाँ पीछे छूट जानेवाला मैं दरअसल तुम्हारे साथ ही चला जाऊँगा। लेकिन यह सिर्फ दिलासा भर है।' मैंने हँसकर कहा। लेकिन शायद मैं हँसा नहीं था। खिसियाया था। या शायद रोया था। क्योंकि मेरे जवाब को सुन के. सामनेवाले सोफे से उठ मेरे सोफे पर आ गई थी। मेरे एकदम निकट। इतना कि उसकी साँसों का आना-जाना मैं बहुत स्पष्ट सुन पा रहा था। उसकी निकटता मुझे कमजोर बनाने लगी। लगा कि एक भी शब्द किसी ने बोला तो मैं टूट

जाऊँगा। मेरा मन हुआ कि मैं कामिनी के कंधे पर अपना सिर रख लूँ और अपने भरे हुए मन को उलीच दूँ।

मैं थोड़ा तिरछा हुआ ताकि बगल में बैठी कामिनी को पूरी तरह देख सकूँ। वह एकटक मुझे देख रही थीं। बेसुध। लगा, जैसे मेरे समूचे अस्तित्व को अपनी आँखों के भीतर सुरक्षित कर लेने की प्रक्रिया में हो। ऐसे में मैं कुछ भी कहता, उसे सुनाई नहीं पड़ता इसलिए चुप रहा और उसके देखने को देखता रहा।

'मैं सचमुच तुम्हें बहुत प्यार करने लगी हूँ।' कामिनी के होंठ हिले। बिल्कुल इस तरह जैसे नींद में हिले हों।

स्वप्न के भीतर का स्वप्न शायद यही होता है, मैंने सोचा और कामिनी के होठों को अपनी उँगली से छू दिया। वे तप रहे थे और आधे खुल गए थे। कामिनी को ऐसी स्वप्निल मुद्रा में देख मेरे रक्त में तेज सनसनी होने लगी। सहसा ही मुझे लगा मेरे मस्तिष्क की रेखा मेरे हृदय की रेखा में जाकर विलीन हो गई है और अब इस बदन का मालिक सिर्फ हृदय है। कामिनी के यहाँ भी शायद ऐसा ही कुछ घटित हुआ था। उसकी आँखें मुँदने लगी थीं और देह धीमे-धीमे थरथराने लगी थी। संयम और संकोच के आखिरी बिंदु शायद पीछे छूट गए थे। मैंने पाया कि मेरे दोनों हाथ उठे और उन्होंने कामिनी का चेहरा अपनी गिरफ्त में ले लिया। फिर उन हाथों ने कामिनी के चेहरे को आगे किया। कामिनी के भी हाथ उठे और मेरी पीठ पर जाकर बँध गए। यह निर्भय प्रेम का विराट क्षण था। कामिनी के होठ मेरे होठों के बीच दबे हुए इस क्षण के अनश्वर गवाह बने हुए थे। मैं कामिनी की और कामिनी मेरी साँसें पी रही थी।

तभी कमरे की कोयल फिर कूकने लगी।

हम प्रेम में थे, पाप में नहीं। और इसका प्रमाण यह था कि कोयल की कूक ने हमें झटके से अलग नहीं किया। हम जिस तरह धीरे-धीरे बँधे थे उसी तरह धीरे-धीरे हटे। मैंने देखा कामिनी के चेहरे पर उत्तेजना का एक भी चिह्न शेष नहीं हर गया था। उसकी आँखों की शांति किसी चुप, ठहरी हुई झील का आभास करा रहा रही थी। सुख और तृप्ति के इसी अनुभव के सहारे एक उम्र पार की जा सकती है क्या, मैंने अपने आप से प्रश्न किया और पाया कि एक ईमानदार इनकार मेरे भीतर रूठे हुए बच्चे-सा खड़ा है। तो क्या, अचानक ही मेरा प्रेम कामिनी की देह माँगने लगा है। मैंने सोचा और अपने अपराधी मन के सामने एक तर्क को लाकर खड़ा किया... हाड़-माँस के मनुष्य अगर प्रेम कर रहे हैं तो देह गैरहाजिर कैसे रहेगी और क्यों रहे?

वेटर था। चाय के बर्तन लेने आया था। कामिनी उसे खाने का आर्डर लिखा रही थी, मुझसे पूछे बगैर। वेटर के जाते ही वह बोली, 'खाना आने तक तुम नहा लो।'

'नहा लूँ? मैं चौंका फिर मुस्कराता हुआ बोला, 'चलो, दोनों साथ नहाते हैं।'

'अभी-अभी तो नहाए थे।' कामिनी मुस्कराई फिर गंभीर हो गई। उसका गंभीरता से घबराकर मैं तुरंत ही अपनी पाली में लौट आया। जैसे उसकी गंभीरता बीच की वह रेखा थी जो हमें अपनी-अपनी पाली में लौटने पर मजबूर करती थी।

'क्या हमें इतनी दूर जाने का हक है जहाँ से लौटना संभव न हो?' कामिनी की गंभीरता ने अपना चेहरा दिखाया।

'हक।' मुझे यह शब्द चुभ गया : 'हमें कितनी दूर जाना है, इसकी इजाजत लेनी होगी किसी से?'

'हाँ।' कामिनी ने जवाब दिया तो मेरा माथा तपने लगा। कनपटी के पासवाली नस का उछलना महसूस करते हुए मैंने तीखे शब्द उच्चारे :'किससे? तुम्हारे पति से?'

'नहीं। पुष्पा से।' कामिनी शांत थी।

'इसलिए कि वह मेरी पत्नी है?' मैं शांत नहीं हो पा रहा था।

'नहीं। इसलिए कि वह तुम्हें उतना ही प्यार करती है जितना मैं। मैं अधिकार की तो उपेक्षा कर सकती हूँ लेकिन प्रेम की नहीं।'

'लेकिन पुष्पा मुझे प्रेम करती है यह तुम्हें किसने बताया?'

'पुष्पा ने।'

'पुष्पा ने?' मैं बड़ी जोर से चौंका : 'पुष्पा तुम्हें कहाँ मिली?'

'मिली नहीं, उसके पत्र हैं मेरे पास।'

'पुष्पा के पत्र?' मैं लड़खड़ा गया। लगा, कमरे में विस्फोट हुआ है। कमरा गोल-गोल घूमता लगा मुझे। कामिनी भी घूम रही थी। मेरी गर्दन पर पसीना उतर आया था।

पुष्पा ने पत्र लिखे तुम्हें? मैंने पूछना चाहा, लेकिन शब्द गले के भीतर ही फँसे रह गए। बोलने की कोशिश में एक अजीब-सी गों-गों हुई जिसने मुझे भयभीत कर दिया। माँ के

पेट में पड़े-पड़े चक्रव्यूह में घुसना भर सीखा था अभिमन्यु ने इसीलिए प्रवेश तो कर गया मगर भेद नहीं पाया। अंत में मारा गया। मुझे लगा, मैं वही अभिमन्यु हूँ। उत्साह-उत्साह में चक्रव्यूह के भीतर तो आ गया लेकिन बाहर निकलने का दरवाजा न मिल पाने के कारण क्रमशः मृत्यु की ओर बढ़ रहा हूँ।

यह जानते हुए भी कि कामिनी से पुष्पा द्वारा लिखे गए पत्रों की इबारत जानना खुद को छोटा और ओछा बना लेना होगा, मैं रुक नहीं सका और भिंचे-भिंचे स्वरों में बोला, 'उसने क्या लिखा तुम्हें?'

'ऐसा कुछ नहीं जो तुम्हें आहत करे।' कामिनी सामनेवाले सोफे पर बैठ गई। मुझे लगा, जब यह जवाब देकर कामिनी ने मुझे छोटा कर दिया है।

'पर उसे तुम्हारा पता कहाँ से मिला**?**'

'तुम्हारी डायरी से।'

'डायरी भी पढ़ी उसने?' मेरा आश्चर्य ज्यों-ज्यों बढ़ रहा था त्यों-त्यों मेरा ब्लडप्रेशर घट रहा था मानो, 'यह दगाबाजी है। बहुत छोटी निकली वह।' मैं क्षुब्ध था।

'न यह दगाबाजी है और न ही वह छोटी है,' कामिनी जैसे पुष्पा की लड़ाई लड़ रही थी, 'उसने मुझे लिखा कि मैं तुम्हारी देह ले लूँ लेकिन हृदय उसके लिए रहने दूँ। छोटी औरत ऐसा नहीं चाह सकती। ऐसा सिर्फ वही चाह सकता है जो प्रेम करता हो। और प्रेम का मैं अपमान नहीं कर सकती। पुष्पा नासमझ जरूर है पर छोटी नहीं है।'

'और क्या-क्या लिखा उसने**?**' मैं कटुता से भरता जा रहा था पुष्पा के प्रति।

'मुझ पर कोई आरोप नहीं लगाया उसने। उसका मानना है कि तुम्हारे इस तरह मुझसे जुड़ जाने की वजहें उसी के भीतर हैं। और वह उन वजहों को दूर करना चाहती है।'

कामिनी चुप हुई तो मैंने सोफे से उठना चाहा। लेकिन हिल भी नहीं सका। मैंने चाहा कि सिगरेट ही पी लूँ, लेकिन हाथ में जुंबिश भी नहीं हुई। समूचा बदन जैसे काठ हो गया था।

यानी पुष्पा इस संबंध के बारे में सब कुछ जानती है। संकेत तक नहीं दिया उसने कि उसे कामिनी के बारे में जानकारी है। ऐसा क्योंकर संभव हुआ। मैं सोच रहा था और स्त्रियों के रहस्यों से आतंकित हुए जा रहा था।

'तो?' अचानक मेरे मुँह से निकला।

कामिनी ने कोई जवाब नहीं दिया।

'हमने जो किया, वह प्रेम था या कोई सुधारवादी आंदोलन का ड्रामा?' मैंने पूछा, 'पुष्पा को सुधारने के लिए प्रेम कर रहे थे हम?'

'नहीं।'

'तो फिर?'

'मैं तुरंत कोई जवाब नहीं दे सकती। बीरबल नहीं हूँ मैं, एक कमजोर स्त्री हूँ। तुम्हारी तरह मैं भी टूटती और आहत होती हूँ कभी-कभी। हर समस्या का समाधान मैं ही क्यों करूँगी। तुम पुरुष होकर भी नहीं लड़ सकते तो मुझसे यह उम्मीद क्यों करते हो कि मैं अपनी भी लड़ाई लड़ूँ और तुम्हारी भी।' कामिनी की आँखें डबडबा आई थीं और अंतिम वाक्य पर आते-आते स्वर भर्रा गया था।

मैं सिहर गया। टूटी हुई कामिनी का सामना करना मेरे लिए एक बड़ी यातना थी। उसकी हताशा मेरे कमजोर मन को बिठा दे सकती थी। जिसकी रोशनी में सूरजमुखी साँस ले रहा हो उसी सूर्य के गायब हो जाने पर वह मर नहीं जाएगा?

'सुनो। मैं अब जाऊँगा।' मैं अचानक उठ खड़ा हुआ।

'नहीं,' कामिनी की चीख-सी निकली, 'ऐसी स्थिति में मुझे छोड़कर नहीं जा सकते तुम। आखिर मेरा भी हक है तुम पर।' कामिनी तेजी से उठी और मेरे निकट आ गई।

कोयल फिर बोली। शायद खाना आया था। कामिनी ने दरवाजा खोला। उसका पति था। पति के पीछे ही खाना भी था।

'मैं अब चलूँगा।' पति के पास खड़ी कामिनी से मैंने कहा।

वह मुड़ी और उसने आदेश दिया : 'कहीं नहीं जाओगे तुम। मैं तुमसे मिलने ही यहाँ तक आई हूँ।'

काले पड़ते कामिनी के पति के चेहरे को देखता मैं पुनः सोफे पर बैठ गया।

'मुझे शायद अभी नहीं आना चाहिए था।' कामिनी के पति के चेहरे पर व्यंग्य उतर आया था।

'हाँ।' कामिनी ने सख्त स्वर में जवाब दिया : 'मुझे दुख है कि तुम दुखी हो। लेकिन मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि मुझे अकेले जाने दो।'

'कामिनी! स्वतंत्रता की भी एक सीमा होती है।'

'अच्छा!' कामिनी मुस्कराई, 'स्वतंत्रता की सीमा तुम बताओगे मुझे। तुम, जो सीमाओं को बहुत पहले नष्ट कर चुके हो!'

'भाड़ में जाओ तुम।' कामिनी के पति ने क्रोधित होकर जवाब दिया और कमरा छोड़ दिया।

वेटर खाना मेज पर लगा रहा था। कामिनी गुस्से में काँपती चुप खड़ी थी और मैं सोच रहा था कि ऐसा कोई यंत्र नहीं मिल सकता मुझे जो कामिनी की दुनिया को मेरे लिए पारदर्शी बना दे।

वेटर के जाने के बाद दरवाजे को बंद कर कामिनी बाथरूम में चली गई। मैं इस बीच उस पाँच सितारा होटल के छह सितारा पकवान को देख-देख अपनी गरीबी पर कुढ़ता रहा। कामिनी बाथरूम से आई तो बदल गई थी। फिर वही स्निग्ध मुस्कान उसके चेहरे पर लौट आई थी जो उसे कमनीय बनाती थी।

भूत को पाए बगैर न तो भविष्य से टकराया जा सकता है और न ही वर्तमान को जाना जा सकता है। अपने बिस्तर पर करवटें बदलता हुआ रात के डेढ़ बजे मैं उस वाक्य के बारे में सोच रहा हूँ जो दोपहर दो बजे शाहजहाँ होटल के कमरा नंबर **203** में मैंने कामिनी से कहा था और इस वाक्य के बोले जाते ही कामिनी का अभेद्य संसार इस तरह खुल गया था जैसे मेरा वाक्य कोई मंत्र रहा हो। रात दस बजे तक मैं कामिनी के साथ था। मेरे वहाँ से आने तक उसका पति नहीं आया था। शाम सात बजे यह खबर आई थी कि वह होटल के बार में बैठा शराब पी रहा है और जब उसकी जरूरत पड़े, उसे बुला लिया जाए। उस समय तक कामिनी की दुनिया मेरे लिए अजनबी नहीं रह गई थी इसलिए मुझे कामिनी के पति के व्यवहार पर कौतूहल नहीं हुआ था।

रात दस बजे तक कामिनी के साथ गुजरा वक्त जैसे एक महास्वप्न था जिसमें मैं कामिनी की उँगली पकड़े पकड़े घूमता रहा था और कभी चकित होता था, कभी उत्तेजित और कभी उदास। कामिनी मुमताज नहीं थी जिसकी याद में ताजमहल खड़ा हुआ था। कामिनी ताजमहल थी जिसकी संगमरमरी दे के तहखाने में कामनाओं के मकबरे थे।

सुबह दस बजे से रात दस बजे तक के बारह घंटों में उसने मुझे प्रेमिका का प्यार दिया था, बहन का स्नेह, माँ का अभय और संरक्षण तथा दोस्त की तरह मेरे सामने खुद को अनावृत किया था। मैं चाहता तो पत्नी की तरह उसकी देह को भी ले सकता था लेकिन उसे जान पाने का सुख इतना विराट था कि देह सुख की कल्पना भी नहीं उगी मन में।

कामिनी को जानने का अनुभव कुछ कुछ ऐसा था जैसे बेताल पच्चीसी की किसी कथा को जीना। ठीक ऐसा ही घटित हुआ था उस वक्त जब कामिनी के भूत में प्रवेश कर रहा था मेरा वर्तमान। मैं विक्रमार्क था जैसे और अपने हठ में कामिनी के शव को पेड़ से उतार कंधे पर डाल चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा था।

और तब शव में स्थित बेताल ने कहा था : 'भारत देश के कलकत्ता शहर में कामिनी नाम की एक राजकुमारी रहा करती थी। पिता जे.आर. पटवर्द्धन, जो नगर के पाँच बड़े उद्योगपतियों में से एक थे लेकिन अंत समय तक पहुँचते-पहुँचते जिनका कारोबार बहुत घट गया था, की इकलौती संतान होने के कारण कामिनी को नृत्य, संगीत, कला और साहित्य में पुत्र की तरह पारंगत होने का अवसर मिला। खुली हवा और स्वतंत्र विचारों के आलोक में जवान होनेवाली कामिनी को बाईस वर्ष की उम्र में पता चला कि उसका विवाह एक ऐसे पुरुष से होने जा रहा है जिसे वह जानती ही नहीं। यह पिता की मृत्यु का समय था। वचन को गीता की कसम की तरह निभानेवाले पिता का अनुरोध कामिनी टाल नहीं सकी और उसने सिर झुका कर आर.एस. वर्द्धन नाम के उस पुरुष को अपने पति के रूप में वरण किया जो एक तबाह हो चुके बड़े उद्योगपति का कंगाल पुत्र था। वह धन से ही नहीं हृदय और मस्तिष्क से भी कंगाल था। तीन वर्ष के भीतर ही उसने कामिनी की आधी पूँजी को भी डुबो दिया और तब कामिनी ने अपने पुश्तैनी व्यापार को बंद कर एक बड़ा-सा छापाखाना खोला जो बाद में चलकर नगर का सबसे बड़ा छापाखाना कहलाया। विवाह के बाद कामिनी को पता चला कि उसके पति के नगर की अनेक कुख्यात स्त्रियों से अनैतिक संबंध हैं और छापेखाने की कमाई का एक बड़ा अंश वह उन स्त्रियों के रख-रखाव पर खर्च करता है। पिता के वचन को अभिशाप की तरह जीनेवाली कामिनी ने अपने को पूरी तरह साहित्य और संस्कृति की दुनिया में डुबो दिया और तब उसके जीवन में आया - अमिताभ दास। सुसस्कृत बंगला परिवार का नगर भर में चर्चित हिंदी कवि। तब कामिनी को उम्र तीस बरस थी और तब अमिताभ दास चालीस वर्ष का था। तब तक कामिनी ने अपने पति की और उसके पति ने कामिनी की दुनिया से अपने को हटा लिया था।

अमिताभ के साथ कामिनी के संबंध चले चार वर्ष तक। चार वर्षों के क्रमशः प्रगाढ़ हुए भावात्मक संबंधों में कामिनी ने अपनी देह अमिताभ दास को सौंपने में कोई संकोच नहीं किया। अमिताभ के परिचय ने कामिनी को गर्भधारण भी कराया लेकिन एक रात पति के जंगली हो उठने पर कामिनी का गर्भ सात माह के समय में गिर गया और उसके बाद वह फिर कभी गर्भ धारण नहीं कर सकी। इन चार वर्षों में अमिताभ की दो कविता पुस्तकें कामिनी के खर्च पर कामिनी के ही छापेखाने में छपीं और ऐसा बीसियों बार हुआ कि किसी होटल के बार से रात के बारह, एक या दो बजे कामिनी के पास फोन गया कि अमिताभ नशे में धुत है और उसके पास होटल का बिल चुकाने का पैसा भी नहीं है। ऐसे हर वक्त में कामिनी होटलों में पहुँची और अमिताभ को अपनी कार में डालकर उसके घर छोड़कर आई।

यह कामिनी का प्रेम था। लेकिन जब यह प्रेम काफी हाउस और होटलों के बारों में खुद अमिताभ के मुँह से ही चटखारे का विषय बनने लगा तो कामिनी एक झटके से मुक्त हो गई। कामिनी के मुक्त होने पर अमिताभ कितना नीचे गिरकर उसके बारे में कैसी-कैसी अफवाहें गढ़ने लगा इस पर एक ग्रंथ लिखा जा सकता है। लेकिन कामिनी ने उफ नहीं की और इस यातना का सफर अकेले ही तय किया। अलगाव के एक वर्ष बाद अमिताभ अपनी पत्नी और दो बच्चों को लेकर वापस गाँव चला गया जहाँ से कामिनी ने उसे कलकत्ता बुलाया था।

और अब वह जुड़ी है कौशल से और उसे खोना नहीं चाहती। वह यह भी नहीं चाहती कि पुष्पा को उसके प्राप्य से वंचित कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में क्या करे कामिनी और क्या करे कौशल?

अगर इस प्रश्न को पूछने के बाद कहा होता बेताल ने विक्रमार्क से कि जवाब न देने की स्थिति में तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा तो मुझे दुख न होता क्योंकि तब आँख मींच कर मृत्यु की प्रतीक्षा की जा सकती थी। लेकिन ऐसी कोई शर्त नहीं थी सामने इसलिए मैं अपने बिस्तर पर लेटा जाग रहा था रात के डेढ़ बजे और सोच रहा था, अभिमन्यु मारा गया था या उसने आत्महत्या की थी?

'क्या है जो तुम्हें सोने नहीं दे रहा है?' यह पुष्पा थी जो बगल की चारपाई पर पड़ी मेरे साथ-साथ जाग रही थी शायद! लगातार।

'कामिनी का भूत!' मैंने जवाब दिया और अँधेरे में पुष्पा का चेहरा पढ़ने की कोशिश की।

'कौन कामिनी?' उधर से गहरे आश्चर्य में डूबा स्वर उभरा।

'बनो मत!' मैंने उस स्वर को डपट दिया और चुप हो गया।

'इसका मतलब उन्होंने तुम्हें बता दिया' पुष्पा का स्वर आहत था, 'मैंने उनसे निवेदन किया था कि वे तुम्हें यह न बताएँ कि मैं उनके और तुम्हारे बारे में जान गई हूँ।'

'उसने शिकायत नहीं की तुम्हारी, गुणगान किया,' मैंने चिढ़कर कहा।

'वे बड़ी औरत हैं।' पुष्पा शांत थी। लेकिन उसकी शांति से मैं उखड़ गया : 'हाँ बड़ी औरत है वह। हर कोई तुम्हारी तरह छोटा नहीं होता।'

'लेकिन छोटा आदमी बड़ा बन तो सकता है' पुष्पा अभी तक शांत थी।

'अब देर हो गई है पुष्पा।' मैंने ठंडी आवाज में जवाब दिया।

'बिल्कुल देर नहीं हुई।' पुष्पा ने जवाब दिया और उसके जवाब के साथ ही 'खट' करके बिजली जल गई। अँधेरे की अभ्यस्त हो चुकी मेरी आँखें सहसा ही चौंधिया गईं। हाथ रखना पड़ा मुझे उन पर। पुष्पा इस बीच मेरी खाट पर चली आई थी।

'सुनो, मुझे कामिनी जी के कारण कोई कष्ट नहीं है।' पुष्पा ने कहा, 'अगर वे तुम्हारे साथ आकर रहना चाहें तो मैं चुपचाप चली जाऊँगी।'

पुष्पा के आत्मसमर्पण पर मुझे खुश होना चाहिए था लेकिन मैं गहरे दुख से भर उठा। यह प्रेम है या दया भाव? मैंने सोचा और पुष्पा की आँखों में देखा जो बहुत दूर तक खाली थी। वह जैसे निस्संग हो चुकी थी।

'कहाँ चली जाओगी?' मैंने पूछा।

'बहुत बड़ी है दुनिया' पुष्पा के भीतर अचानक ही एक मजबूत औरत ने जन्म लिया, 'क्या मुझे ऐसा एक भी आदमी नहीं मिलेगा जो मुझे मेरे सिद्धार्थ के साथ अपना सके?'

'आदमी? सिद्धार्थ?' मेरे मुँह से निकला और तुरंत ही मुझे पता चल गया कि कितने गलत और कमजोर शब्द मेरे मुँह से निकले हैं।

पुष्पा ने कोई जवाब नहीं दिया। मैं भी चुप रहा लेकिन मेरे दिमाग में एक तीखा शोर उठा। यह तो मैंने सोचा ही नहीं था कि पुष्पा के जीवन से चले जाने का मतलब है सिद्धार्थ का भी चले जाना।

और तब यातना के उस एकांत में मुझे अनुभव हुआ कि मैं ऐसा बुद्धू हूँ जिसे बोधिसत्व प्राप्त नहीं हुआ है। मैं वह दुविधाग्रस्त अर्जुन हूँ जिसे कृष्ण का साथ उपलब्ध नहीं है। कैसे लड़ूँगा मैं इस महाभारत को?

यह कैसा प्रेम है जिसमें संघर्ष के सिवा और कुछ नजर नहीं आता दूर-दूर तक। महाभारत में पांडव जीत गए थे। मैं पांडवों का प्रतीक हूँ या कौरवों का? पुष्पा को भी लड़ना है यह अठारह दिनों का संग्राम और कामिनी को भी। कौन जीतेगा इस युद्ध में? और जो भी जीतेगा क्या उसके हिस्से में जनहीन धरती ही आएगी? क्या होगा ऐसे राज्य का जिसमें प्रजा ही नहीं होगी।

और तब कोलाहल को चीरता हुआ एक वाक्य दसों दिशाओं में गूँज उठा -'अश्वत्थामा हतो हतः'। इस वाक्य के तुरंत बाद नगाड़ों के शोर ने दिशाओं को लील लिया। नगाड़ों के शोर में 'नरो वा कुंजरो वा' सुनाई ही नहीं पड़ा और मैं झटके से चारपाई पर उठ बैठा। पसीना माथे से चलकर गर्दन से होता हुआ पेट और पीठ की तरफ बढ़ रहा था और दिमाग में हल्के-हल्के विस्फोट हो रहे थे। मैंने दोनों हाथों से कसकर अपना माथा दबा लिया लेकिन वहाँ जो कुछ घट रहा था लगातार, उससे कलेजा मुँह को आ रहा था।

पुष्पा संभवतः घबरा गई थी और भागकर रसोई से पानी का गिलास ले आई थी। मेरी आँखें उलटी जा रही थीं और मन में तेज इच्छा थी कि मुँह में उँगली डालकर वमन करूँ।

'क्या हुआ?' पुष्पा सचमुच घबरा गई थी और मेरे मुँह पर पानी के छींटे मारने लगी थी।

'मैं मरा नहीं हूँ पुष्पा। मैं मर नहीं सकता। अजेय हूँ मैं।' मैंने दोनों हाथों से पुष्पा को पकड़ लिया, 'नगाड़ों के शार में कुचले हुए सच को पकड़ो, 'नरो वा कुंजरो वा' धीमा हो सकता है पर वह है। जो मरा है वह हाथी है। अश्वत्थामा जीवित है पुष्पा। नगाड़ों के पार खड़े हुए शब्दों को जानो। सच्चाई हमेशा शोर के पीछे जीवित रही आई है।' मैं बोल रहा था लगातार और पुष्पा एक गहरे दुख और विस्मय के दलदल में धँसती काँप रही थी। अंततः उसने मुझे आहिस्ता से खाट पर लिटा दिया लेकिन मैं फिर उठ बैठा और

पुष्पा से चिपट कर चीखा - 'स्वीकार है मुझे। कामिनी के भूत में अमिताभ दास नाम का जो अजगर पसरा हुआ है उसको झेल नहीं सकता मैं।'

'कौन अमिताभ दास?' पुष्पा विस्मय और दुख के दलदल में धँसी हुई थी पूर्ववत और तब उसे बाहर निकालने के लिए मैंने पुष्पा की तरह अपना हाथ बढ़ाया।

उसने अपना हाथ मेरे हाथ में दिया और मैं उसका हाथ थामे उस दिशा की ओर बढ़ चला, जहाँ आगे जाकर कामिनी का रहस्यमय और उबड़-खाबड़ संसार खंजर की तरह तना हुआ था।

जब हम कामिनी की दुनिया से लौटे तो पुष्पा की आँखें फटी हुई थीं और मेरी आँखों से रह रहकर वे शब्द बह रहे थे जिन्हें मैं आकार नहीं दे पा रहा था।

'सचमुच यह बहुत खौफनाक है।' पुष्पा हाँफ रही थी।

'खौफनाक नहीं कारुणिक है।' मैंने उसे सुधारा।

'कारुणिक तुम्हारे लिए होगा लेकिन एक स्त्री के लिए यह सब झेलना बेहद डरावना है।' पुष्पा ने जवाब दिया।

'मैं सोना चाहता हूँ।' मैंने याचना सी की।

'अब तुम कभी नहीं सो पाओगे।' पुष्पा ने क्रूरता से कहा। कम से कम मुझे ऐसा ही लगा।

पुष्पा बिजली बंद करके वापस अपनी खाट पर चली गई थी सिद्धार्थ की बगल में, और मैं अपनी खाट पर अकेला छूट गया था - पुष्पा, सिद्धार्थ और कामिनी के बावजूद।

और उस अँधेरे में एक विशालकाय अजगर फुँफकारता हुआ मेरी तरफ बढ़ रहा था। लगातार। मारे भय के मेरी घिग्घी बँधी हुई थी।

अलीबाबा नहीं था मैं। शायद कासिम था। गुफा में प्रवेश कर तो गया था और वहाँ मौजूद तमाम माल-असबाब थैलों में भर चुका था लेकिन जब लौटने का समय हुआ तो मैं भूल गया कि क्या कहने से गुफा खुलती है।

यह आंतक का क्षण था और मेरी डिब्बी की तमाम सिगरेटें खत्म हो चुकी थीं। मैंने गहरे दुख, पश्चाताप और भय में घिर कर कामिनी को देखा। उसका चेहरा एक घने अवसाद में डूब कर शिथिल पड़ गया था और आँखों में कोई भी भाव नहीं था। कुछ ही क्षण पहले उसकी आँखों में तृप्ति और संतोष के जो भाव थे वे अब किसी स्वप्न की तरह एक स्मृति भर रह गए थे।

'कुछ और चाहिए तुम्हें?' सहसा ही कामिनी ने एक ऐसा प्रश्न किया जिसने मुझे भीतर तक कई हजार टुकड़ों में बाँट दिया। दुखी हो सकता था मैं, हुआ। बहुत बेचैन होकर मैंने उसे देखा। वह निर्विकार ढंग से पेटीकोट में लिपटी फर्श पर बिखरी साड़ी समेट रही थी। मैं उसे देखता रहा। उसने साड़ी तह करके सोफे पर रखी और तौलिया लेकर बाथरूम में चली गई।

मैंने के. को पा लिया था लेकिन इस पाने के साथ ही खुद को भीतर तक खाली महसूस करने लगा था। यह पाना कोई अर्थ नहीं रखता था क्योंकि जो कुछ मैंने पाया था वह मेरे साथ जाने वाला नहीं था। यह ऐसी दौलत थी जो तब तक बेमानी थी जब तक यह आश्वासन न हो कि इस पर मेरा हक है। समय हो चुका था और मैं भूल गया था कि गुफा का दरवाजा क्या कहने से खुलता है? थोड़ी ही देर बाद मैं चार टुकड़ों में तब्दील किया जाकर गुफा के चार कोनों में लटक जानेवाला था।

यह थी मेरी परिणति। कोई भी नहीं चाहता इस परिणति को पहुँचना। मैंने भी नहीं चाहा था। पर चाहने मात्र से क्या होता है?

'मुझसे शादी करोगे?' यह सीधा सवाल किया था के. ने, मेरे इस प्रश्न के जवाब में कि 'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम कलकत्ता न जाओ?'

'शादी?' मेरी लहलहाती हुई कामना को पाला मार गया था जैसे, लेकिन पुष्पा का क्या होगा?' मेरे मुँह से निकला था।

'उसे छोड़ देना।' के. ने जिस लापरवाही से यह वाक्य कहा उसे देख मैं सिहर गया अचानक।

'छोड़ दूँ?'

'हाँ।' के. की लापरवाही बरकरार थी, 'मैं भी तो अपने पति को छोड़कर ही यहाँ रह सकती हूँ।'

'लेकिन तुम्हारे पति और पुष्पा में फर्क है।,' मैंने एक तर्क को उठाकर सीधा किया, 'उन्हें कोई दूसरी औरत मिल जाएगी मगर पुष्पा को दूसरा आदमी नहीं मिलेगा।'

'यह तुम कैसे कह सकते हो?'

'मुझे मालूम है।'

'कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम यह बर्दाश्त ही न कर पा रहे हो कि पुष्पा किसी दूसरे आदमी से जुड़े?'

'हो सकता है।' मैंने हथियार डाल दिए।

'तो, मुझे तुमने क्या रखैल समझा हुआ है?'

'के.?' मेरे मुँह से चीख निकली और कनपटी के पासवाली नस तेजी से उछलने लगी। उत्तेजना या दुख का दबाव भारी हो तो मेरी यह नस उछलने लगती है और दिल में सायँ-सायँ होती है। मैं यकीन नहीं कर पा रहा था कि ये शब्द के. के मुँह से निकले हैं। गहरे अविश्वास से मैंने उसे देखा। वह होठों पर हथेली रख सिसकने लगी थी। मैंने उसे रोने दिया। मुझे मालूम था, वह पश्चाताप की आग में जल रही है। रोने से अपने आपको पवित्र और हल्का महसूस करेगी।

'कौशल!' सहसा ही वह मुझसे चिपट गई और सिसकियाँ भरते हुए बोली, 'मैं क्या करूँ? आखिर मैं भी एक औरत ही हूँ।'

मेरी एक आँख चुपचाप रहने लगी। स्थितियों की भयावहता और जटिलता जब आकर को छाने लगती है तो आँख चुप-चुप बहती ही है - फिर चाहे हारनेवाला पुरुष हो या स्त्री।

अपनी पराजय और असमर्थता के उन कमजोर क्षणों में कामिनी के जिस्म पर मेरी स्निग्ध और आत्मीय पकड़ अचानक ही सख्त हो गई और मैंने पाया कि प्रत्युत्तर में कामिनी के साथ भी ऐसा ही हुआ है। उसके सिसकियों के कारण फड़कते हुए शीतल होठ अनायास ही एक आदिम तपिश से सुलगने लगे और मेरे होठों से आकर चिपक गए।

शायद यही वह क्षण था जब मेरे रोम-रोम ने कहा 'खुल जा सिमसिम' और गुफा में मौजूद जमाने भर की दौलत से चौंधियाई हुई आँखों को मिचमिचाते हुए मैं गुफा में

और और गहरे प्रवेश कर रहा था और उस दौलत को दोनों हाथों से बटोरता हुआ थैले पर थैले भरता जा रहा था। इस पागलपन में कामिनी भी मेरे साथ थी।

आखिर हम दोनों ही निढाल हो गए और मूर्छित से एक तरफ गिर पड़े। और जब मेरी आँख खुली तो मैंने पाया कि कामिनी मेरे साथ नहीं है और गुफा का दरवाजा बंद है। और तब मुझे अहसास हुआ कि जिसे मैं मुक्ति का क्षण समझ रहा था वह दरअसल गुलामी का क्षण था। अब मैं चाहूँ भी तो कामिनी से अलग नहीं हो सकता। जो शब्दातीत सुख उसके साथ ने मुझे दिया था वह एक मायावी स्मृति की तरह यहीं रह जानेवाला था और कामिनी कल सुबह की फ्लाइट से कलकत्ता लौट जानेवाली थी।

नहीं। मेरे भीतर कोई जोर से रोया और मैंने पाया कि मैं अर्धनग्न हालत में बाथरूम का दरवाजा पीट रहा हूँ।

'क्या हुआ?' भीतर से आवाज आई और दरवाजे की चिटखनी खुली। मैं धड़धड़ाता हुआ भीतर प्रवेश कर गया। भीतर कामिनी थी चौंकी हुई, बदहवास और सर से पाँव तक नग्न।

'मत जाओ, प्लीज...' मैंने गिड़गिड़ाकर कहा और उसके वक्ष के बीच अपना सिर रख दिया। वह खड़ी थी। उसका चेहरा ममत्व से भर उठा था। मैं घुटनों के बल बैठा उसकी कमर को अपनी बाँहों से घेरकर उसकी आँखों में ताक रहा था और वह एकटक मुझे देखती हुई मेरे सिर को सहला रही थी। फिर वह थोड़ा झुकी और उसने मेरे माथे को चूमकर आहिस्ता से कहा : 'बाहर जाओ।'

'नहीं।' मैंने जवाब दिया और उसे चूमने लगा। मैं एकदम पागलों की तरह बार-बार उसका माथा, आँखें, होठ, गर्दन और वक्ष चूम रहा था और वह मुग्ध भाव से मुझे ऐसा करते देख रही थी। इन क्षणों में उसकी आँखों में जो भाव था उसे देख मैं और भी पागल हुए जा रहा था और सोच रहा था कि क्या शब्दों के संसार से अलग वास्तविक जीवन में भी उस अनुभव को पाया जा सकता है जहाँ पहुँचकर कामिनी का समूचा जिस्म मेरे भीतर विलीन हो जाए।

'लो, मुझे लो।' एकाएक ही कामिनी के होठ बुदबुदाए और वह आँखें बंदकर मेरी बाँहों में झूल गई। पानी में भीगा उसका जिस्म सहसा ही जलने लगा था और मैं क्रमशः पिघल रहा था। वह क्षण फिर लौटा जब मुझे लगा मैं और कामिनी दो नहीं एक ही है और फिर अनायास ही हम बाथरूम के फर्श पर आ गए। यह वह क्षण था जहाँ मैं और कामिनी ही सच थे और बाकी सब चीजें कल्पित और बेमानी थीं।

'ऐसा प्यार मुझे किसी ने नहीं दिया के.।' कामिनी ने अस्फुट स्वरों में कहा और शिथिल पड़ गई।

'सच?' मैंने यूँ ही पूछा और उसकी बगल में आ शांत लेट गया।

'हाँ।' कामिनी की आँखें अभी तक बंद थी। वह जैसे अभी-अभी गुजरे वक्त को पकड़े रखना चाहती थी। फिर उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं और गहरे विश्वास से कहा, 'हाँ, किसी ने नहीं। अमिताभ दास ने भी नहीं।'

'अमिताभ दास?' मेरी छाती पर जैसे घूँसा पड़ा। मैं तड़प कर उठा और शावर खोलने लगा। देर तक चुपचाप नहाने के बाद मैं बदन पर तौलिया लपेट बाथरूम से बाहर आ गया और कपड़े पहनने लगा। कामिनी भीतर से ही तैयार होकर आई और टेलीफोन पर वेटर को चाय का आदेश देने लगी। मैं सोफे पर बैठा था और सिगरेट पीना चाहता था। लेकिन सिगरेटें खत्म हो गई थीं।

'उसे सिगरेट के लिए भी बोल देना।' मैंने आहिस्ता से कहा।

कमिनी ने चाय के साथ 'ट्रिपल फाइव' का पैकेट लाने को भी कहा तो मैं एकाएक ही उदास हो गया। यह जानते हुए भी कि मेरा ब्रांड 'चार्म्स' है, कामिनी ने 'ट्रिपल फाइव' मँगवाई, इस बात ने मुझे आहत किया। कह नहीं सकता क्यों? शायद मेरा हीनताबोध ऐसे में उग्र हो उठता था।

कामिनी फोन करके सोफे पर आई तो मैं अमिताभ दास के बारे में सोच रहा था और एक विशाल अजगर को अपनी ओर सरकते हुए महसूस कर रहा था।

'क्या सोचने लगे?' कामिनी ने पूछा।

'हूँ।' मैंने गर्दन घुमाई और कामिनी को देखा जिसकी आँखों में एक चमकदार आभा दिप-दिप कर रही थी।

'मैं अजगर के बारे में सोच रहा हूँ।' मैंने एक लंबी साँस लेते हुए कहा और सामने पड़ी मेज पर उँगली से 'अजगर' शब्द लिखने लगा।

'अजगर?' कामिनी बड़ी जोर से चौंकी।

'हाँ।' उसके विस्मय से निरपेक्ष मैंने दृढ़ आवाज में कहा, 'तुम्हारे संसार में एक अजगर है जो तुम्हारे तन में नहीं मन में कुंडली मारकर बैठा है।'

'ओह...!' कामिनी का चेहरा सर्द पड़ गया और आँखों की आभा जाती रही।

'है तो।' उसने थके हुए स्वर में कहा, 'क्योंकि मैंने उसे शरीर के स्तर पर नहीं भावना के स्तर पर जिया था, लेकिन मैं खुद भी चाहती हूँ कि उसे अपने संसार से हटा दूँ।'

'यह इतना आसान होता कामिनी, तो मैं भी एक झटके से पुष्पा को छोड़ देता। लेकिन मुझे पता है कि पुष्पा को छोड़ते ही वह और गहराई से अपनी जड़ें जमा लेगी। कहीं जुड़ जाना जितना आसान होता है उतना आसान वहीं से कट जाना नहीं है। जुड़ना एक हद तक हमारे हाथ में है लेकिन कटना हमारे वश से परे है।'

'इस भूमिका की जरूरत नहीं है।' कामिनी ने जवाब दिया।

'यह भूमिका नहीं है।' मैंने प्रतिवाद किया।

'यह भूमिका ही है और भूमिका बनाने की जरूरत ही नहीं है क्योंकि विवाह की बात मैंने तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में कही थी। मेरी अंतिम आकांक्षा विवाह पर जाकर समाप्त भी नहीं होती। मैंने तो तुम्हें आईना दिखाया था।'

'कोई और तरीका नहीं है?'

'किस बात का?'

'हमारे साथ रहने का?'

'उसकी जरूरत ही क्या है? तुम्हें जो चाहिए वह सब तो दे रही हूँ मैं।'

'क्या 'चाहने' का अस्तित्व इतना-भर ही है?'

'तुम जिरह पर उतर आए हो।'

'यह जिरह नहीं है कामिनी। अगर इन प्रश्नों को हल किए बगैर तुम लौट गईं तो मैं...।' मेरे स्वर में पीड़ा तैरने लगी थी, 'अपने मन से पूछो कि यहाँ से जाकर क्या तुम चैन से सो पाओगी?'

'नहीं।' कामिनी ने कहा।

'यह जानते हुए भी तुम वापस जाओगी ही?'

'जाना ही होगा।' कामिनी ने दृढ़ आवाज में कहा, 'क्योंकि हम अपने प्रेम को किसी और रूप में जी नहीं सकते। हमारे अतीत और वर्तमान में कुंडली मारकर बैठे हुए अजगर हमारी चाहतों से ज्यादा विशाल हैं। अगर हमने इन अजगरों की उपेक्षा की तो वे हमारे उस सुख को भी लील लेंगे जो अभी हमें उपलब्ध है।' कामिनी सिर टिकाकर बैठ गई। कुछ देर की चुप्पी के बाद बोली, 'हम जैसे लोगों को प्रेम करते हुए यह अभिशाप जीना ही पड़ता है कि अलग-अलग रहकर तो साथ हो सकें लेकिन साथ रहकर अलग-अलग हो जाएँ। इस प्रेम का यह विरोधाभास हमें स्वीकारना ही होगा कौशल। यह प्रेम अपने इस विरोधाभास के कारण ही आह्लादकारी और शाश्वत है।'

मैंने देखा, कामिनी की आँखें भर आई थीं। वह गहरे दुख में थी। और गहरे प्रेम में भी।

'हमारा सच जैसा भी है, निष्कपट है।' मैंने कामिनी का चेहरा अपनी छाती में छिपाते हुए कहा।

'और इसीलिए खूबसूरत है।' कामिनी ने जवाब दिया और मुस्कराने लगी।

तभी कमरे में कोयल कूकने लगी।

आने वाला वेटर था।

हम चुपचाप चाय पीते रहे।

उस समय शाम के पाँच बजे थे।

कल सुबह पाँच बजे की फ्लाइट से कामिनी को वापस जाना था।

वापस जाना था ताकि वापस आ सके।

मुझे लगा, इस इस सत्य की उपलब्धि ही वह मंत्र है जिसे 'खुल जा सिमसिम' कहते हैं और जिसके उच्चारण से गुफा का दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश किया जा सकता है।

अब मुझे कोई भय नहीं था क्योंकि मैं गुफा से बाहर भी जा सकता था। मैं कासिम से अलीबाबा में बदल गया था और और विदाई के लिए उठ खड़ा हुआ था।

'शाहजहाँ' से निकलकर स्कूटर पर बैठते हुए मैं दुखी नहीं था लेकिन जब कामिनी ने कहा, 'तुम्हें जब भी मेरी जरूरत होगी, मुझे पता चल जाएगा और मैं तत्काल आऊँगी।' तो मेरी आँखें नम हो गईं। स्कूटर पर बैठकर कामिनी से क्रमशः दूर होते हुए

मेरी नजर भी धुँधली पड़ती जा रही थी और जब 'टप-टप' करके दो आँसू मेरी गोद में गिरे तो मैं सोच नहीं पाया कि मैं सुख में हूँ या दुख में।

'किधर चलना है?' स्कूटरवाले ने अचानक पूछा तो मैं तय नहीं कर पाया कि कहाँ जाना है।

'पटेल नगर।' मैंने आहिस्ता से अपने घर का रास्ता बता दिया।

पुष्पा को हो या न हो, लेकिन मुझे इस वक्त पुष्पा के साथ की बहुत सख्त जरूरत थी।

अपनी इस जरूरत में मैं बहुत निष्पाप था।

आप चाहे इस पर यकीन करें या न करें।